तंत्री तथा संपादक :
दीपक देसाई
वर्ष: ४, अंक : ९
अखंड क्रमांक : ४५
जुलाई २००९

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सीटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-३८२४२१
फोन : (०७९)३९८३०१००
e-mail :
dadavani@dadabhagwan.org
अहमदाबाद : (079) 27540408
वडोदरा : (0265) 2414142
मुंबई : 9323528901
राजकोट त्रिमंदिर :
9924343478, 9274111393
U.S.A. : 785-271-0869
U.K.: 07956476253
Website : www.dadashri.org
Hindi.dadabhagwan.org

Publisher, Owner & Printed by :
Deepak Desai on behalf of
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

Printer/Press :
Mahavideh Foundation
Basement, Parshvanath
Chambers, Nr.RBI,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)

१५ साल का

भारत :	८०० रुपये
यु.एस.ए. :	१५० डॉलर
यु.के. :	१०० पाउन्ड

वार्षिक

भारत :	१०० रुपये
यु.एस.ए. :	१५ डॉलर
यु.के. :	१० पाउन्ड

भारत में D.D. / M.O. 'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से भेजे।

दादावाणी

अहो! अद्भूत वीतराग चारित्र 'ज्ञानी' का !

संपादकीय

आज इस काल में जब भरतक्षेत्र में तीर्थंकर भगवान नहीं हैं तब सच्ची वीतरागता के दर्शन कहाँ हो सकते हैं? सच्ची वीतरागता और वीतराग चारित्र तो पूर्ण वीतराग भगवान के पास देखने को मिले, अथवा जिन्हें वीतराग पद की प्राप्ति हुई हो ऐसे ज्ञानीपुरुष के पास ही देखने-जानने को मिले। वीतराग दशा कैसी होती है, वीतराग चारित्र कैसा होता है यह वीतरागता की जीवंत प्रतिमा परम पूज्य दादा भगवान में ही देखने-जानने को मिल सकता है। ऐसा अनुपम वीतराग चारित्र उनकी अद्भूत आंतरदशा का प्रमाण है।

ऐसे वीतराग ज्ञानीपुरुष की दशा कैसी होती है? वो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अप्रतिबद्ध होते हैं, अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के बंधन से मुक्त होते हैं। और इस कारण कोई भी संयोग उन्हें बाधक नहीं होता, किसी भी संयोग के बंधन में नहीं आते और निरंतर स्वतंत्र ही होते हैं। उदयाधीन बरतने के कारण वे निरंतर समाधि दशा में होते हैं।

ज्ञानी संपूर्ण वीतराग दशा में होते हैं! 'करना-नहीं करना' से परे होते हैं, राग-द्वेष रहित होते हैं, उनमें क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते। वे निरंतर वर्तमान में ही रहते हैं। भूतकाल चला गया, भविष्यकाल व्यवस्थित के हाथों में है, यानी शेष क्या रहा? वर्तमान। इसलिए वे हमेशा वर्तमान में ही बरतते हैं और चिंता रहित दशा होती है, पूर्ण सहजता होती है। संपूर्ण अप्रयत्न दशा और उदयाधीन वर्तन होता है, उन्हें अपनापा नहीं होता इसलिए जैसे कुदरत रखे वैसे रहते हैं। विरोध-विक्षेप नहीं होता, शिशु समान निर्दोष होते हैं। बुद्धि-अहंकार और निर्बलता रहित दशा के आपको यहाँ दर्शन होते हैं। उनमें संपूर्ण प्योरिटी होती है, मान, लक्ष्मी, कीर्ति, विषय की भीख नहीं होती। निरिच्छ, निरालंब दशा होती है। मान-अपमान से परे होते हैं। उन्हें निरंतराय पद होता है। वे पूर्ण हुए होते हैं, इसलिए आधार-आधारी संबंध नहीं रहा होता। सर्वज्ञ होने से सर्व तत्त्वों के ज्ञाता होते हैं। निरंतर स्वसमय में स्थित होते हैं। संपूर्ण निर्ग्रंथ होने से निरंतर मुक्त हास्य बना रहता है। ज्ञानीपुरुष वर्ल्ड की ऑब्ज़र्वेटरि (दुनिया की वेधशाला) कहलाएँ, चारों वेद के मालिक कहलाएँ।

तीर्थंकर भगवान का चारित्र और उनकी आंतरिक दशा का अनुभवभूत प्रमाण वह ज्ञानी पुरुष पूज्य दादा भगवान की आंतरिक दशा से मिल सकता है। ऐसे अनुपम, अद्भूत ज्ञानी तो मानों अनुत्तीर्ण तीर्थंकर ही कहलाए न!

ऐसे अनुपम ज्ञानी के पास से दो ही घंटो में हमें आत्मज्ञान प्राप्त होता है। और तब हमारा द्वेषभाव खलास हो जाता है और वीतरागता का प्रारंभ होता है। हमारा अंतिम लक्ष्य, ज्ञानी जैसी वीतराग दशा प्राप्त करने का है। हम आज्ञा में रहकर ज्यों ज्यों प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों का समभाव से निपटारा करते जाएँगे और वीतराग चारित्र को देखकर-जानकर समझते जाएँगे, त्यों त्यों नि:शंक ही वीतराग चारित्र उत्पन्न होता जाएगा। प्रस्तुत संकलन हमें इस दिशा में अवश्य प्रगति कराने में सहायक होगा, इस अभ्यर्थना के साथ।

दीपक देसाई ...

पाठकों से...

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेजी शब्द का अर्थ है अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। पाठक जहाँ पर भी चंदुभाई नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधार कर समाधान प्राप्त करें। भाषांतर में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी हैं।

अहो ! अद्भूत वीतराग चारित्र 'ज्ञानी' का !

अप्रतिबद्धता

प्रतिबद्ध करनेवाला कौन?

प्रश्नकर्ता : एक बार सत्संग में ऐसी बात निकली थी कि यह प्रतिबद्ध करनेवाला कौन है? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तो प्रतिबद्ध नहीं करते हैं, आपकी रोंग बिलीफ़ें (गलत मान्यताएँ) आपको प्रतिबद्ध करती हैं।

दादाश्री : रोंग बिलीफ़ें आज चाहे रही हों या नहीं रही हों, किंतु आप उसके बंधन में तो आ ही गए न? इसलिए वे प्रतिबद्ध करती हैं। फिर भी स्वरूपज्ञानवाले हमारे महात्माओं के लिए वे 'रोंग बिलीफ़ें' हैं (पिछले अवतार का भरा हुआ माल है)। किंतु अन्य लोगों के लिए तो वे प्रतिबद्ध करती हैं। वह है पराया भाग, किंतु वह फिर भी हमें बंधन में रखे। जैसे कि, एक मनुष्य को जलेबी ने (उसमें सुख की मान्यता ने) बाँधा हो, तो वह मान्यता ही उसे वहाँ जलेबी के पास खींच लाएगी। अर्थात् जलेबी ने उसे बाँधा है।

व्यसन करे प्रतिबद्धता

हम भी पचपन साल से चाय पीते थे। आज हमें बहत्तर साल हुए। हमें खुद भी ऐसा लगता था कि यह नहीं होना चाहिए। इस समय यद्यपि मुझे कोई व्यसन नहीं है, चाय तो दो साल पहले छूट गई। लेकिन पचपन साल तक वह किस आधार पर टिकी रही? यह आपकी समझ में आता है?

व्यसन अर्थात् क्या? प्रतिबद्धता। और ज्ञानीपुरुष कौन कहलाएँ, कि जिन्हें द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से अप्रतिबद्धता हो, तब उन्हें ज्ञानीपुरुष कहा जाए। तब फिर मैं अमुक समय पर चाय माँगूँ, तो वह प्रतिबद्धता ही हुई न!

एक ही घंटे में जो ज्ञानीपुरुष मोक्ष (स्वरूपज्ञान) प्रदान करते हैं, घंटेभर में ही (उनकी कृपा से) इतने सारे लोग स्वरूपज्ञान प्राप्त कर चूके हैं, फिर भी वो यदि ऐसे चाय पीए तो यह आश्चर्य किसे बताएँ? और खुद के मन में तो ऐसा ही हुआ करे कि 'यह नहीं होना चाहिए।'

किंतु ज्ञानी हुए, अर्थात् निरंहकारी हुए। इसलिए हम त्याग नहीं सकते। संतपुरुष त्याग सकें। वे अहंकारी होते हैं और हम ज्ञानी निरंहकारी होते हैं। इसलिए कृपालुदेव ने कहा है कि ज्ञानी को त्यागात्याग संभव नहीं है। फिर जो शेष रहा सो रह गया, उसमें फिर बदलाव नहीं होता। उसका क्या कारण है? कि 'त्याग करने के लिए' फिर से अहंकार खड़ा करना पड़े। गया हुआ अहंकार फिर से उपस्थित करना पड़े। इसलिए ज्ञानी क्या करे? कि वह वस्तु अपने आप झड़ जाए तब तक उसे देखते रहे। झड़ जाने की बात आपकी समझ में आती है? अत: वह अपने आप झड़ता जाए दिनोंदिन। त्याग अहंकार का गुण है। अहंकार होने पर ही त्याग हो सकता है वर्ना त्याग संभव नहीं है। इसलिए झड़ जाए।

अर्थात् मेरी चाय झड़ गई कहलाए। आख़िरी बार जब चाय पी थी, उसके बाद मुझे याद तक नहीं

आई है। इसी को झड़ गया कहलाए। छोड़नी नहीं थी और छूट गई, अपने आप ही छूट जाए, साहजिक छूटता जाए सब।

अब हमें द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का कोई बंधन नहीं रहा है। बुद्धि चली गई। अब है कोई मिल्कियत हमारे पास? इस देह के हम मालिक नहीं हैं, इस वाणी के हम मालिक नहीं हैं और इस मन के भी हम मालिक नहीं हैं। सारा मालिकीपन ही छूट गया है। फिर भी चार डिग्री की कमी है, उतना निर्जीव अहंकार रहा है, और इस कारण फिर से ए. एम. पटेल होना पड़ता है।

विचरें अप्रतिबद्ध रूप से सदा

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को भी संयोग तो आएँगे ही न। वे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आधार पर ही आते हैं न?

दादाश्री : संयोगों के आधार पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आते हैं। संयोगों का प्रबंध पहले हुआ होता है।

ज्ञानीपुरुष कहीं बंधते नहीं। निरंतर अप्रतिबद्धता से विचरते हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष को कोई वस्तु प्रतिबद्ध नहीं करती। वस्तु यानी संयोग। द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से वे खुद बँधते नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मतलब जिसने आत्मा का अनुभव किया, क्या वह काल-क्षेत्र से परे हो जाए?

दादाश्री : हाँ, परे हो जाए। काल-क्षेत्र की परवा ही नहीं होती उसे। अर्थात्, उसे काल से अप्रतिबद्धता होती है और क्षेत्र से अप्रतिबद्धता होती है।

प्रश्नकर्ता : यानी ज्ञानीपुरुष भाव से प्रतिबद्ध नहीं होते। ऐसा है न?

दादाश्री : हाँ। भाव से भी नहीं होते, क्षेत्र से भी नहीं होते, काल से भी नहीं होते। प्रतिबद्धता होना वही बंधन है न!

प्रश्नकर्ता : अप्रतिबद्ध का अर्थ क्या है?

दादाश्री : जैसे कि, कोई पसंदीदा क्षेत्र होने पर अंदर ऐसा हो कि 'यहाँ पड़े रहें तो अच्छा है' और नापसंदीदा होने पर 'यहाँ से उठा जाए तो अच्छा है', ऐसा नहीं होता। आपको तो पसंदीदा क्षेत्र छोड़ना पड़े तो भारी पड़ जाए। बंधन हो जाए, द्रव्य-क्षेत्र के साथ। और हमें ऐसा बंधन नहीं होता इसलिए हमें छोड़ना अख़रता नहीं और आपको तो अख़रने लगे।

'बैठे हैं तो अब यहाँ ही ठीक रहेगा' ऐसा हमें नहीं होता। यदि कोई कहे, 'नहीं आप यहाँ नहीं वहाँ बैठ जाइए', तो हम वहाँ बैठ जाएँ। कोई कहे, 'आज भोजन में यह है।' तब हम कहें, 'हाँ, चलेगा।' मतलब क्षेत्र बदले, द्रव्य बदले, तब भाव की प्रतिबद्धता नहीं होती। भाव है, मगर उसके लिए प्रतिबद्धता नहीं होती।

हमसे कहा जाए कि 'नीचे सो जाइए' तो नीचे सो जाएँ, 'ऊपर सो जाइए' तो ऊपर सो जाएँ, 'इस कमरे में सो जाइए तो वहाँ सो जाए। कोई पूछे 'बाथरूम में सोएँगे?' तब हम कहें, 'हाँ, बाथरूम में सो जाएँगे।' हमारी कोई झँझट ही नहीं न। हमें क्षेत्र या काल की झँझट नहीं होती। हम अपनी स्वतंत्रता की मस्ती में ही रहा करें, काल से बंधे हुए नहीं रहें।

आपमें और हममें अंतर क्या है? आपको ये द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव बाँधते हैं, हमें नहीं बाँधते।

हमारा मन बँधता नहीं, हीरे दिखलाए तो भी नहीं बँधता।

इसलिए नहीं श्रम आश्रम का

हमारा कोई आश्रम नहीं होता। मैंने तो पहले ही कहा है कि ज्ञानीपुरुष कौन कहलाए कि जो

आश्रम का श्रम नहीं करते। मैं तो पेड़ के नीचे बैठकर सत्संग करनेवाला मनुष्य हूँ। किसी जगह साधन नहीं हो तो पेड़ के नीचे बैठकर भी सत्संग करें। हमें कोई हर्ज नहीं है। हम तो उदयाधीन बरतते हैं। भगवान महावीर भी पेड़ के नीचे बैठकर ही सत्संग करते थे, वे आश्रम नहीं खोजते थे। हमें कोठरी तक नहीं चाहिए और कुछ भी नहीं चाहिए। हमें किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं है न! कोई चीज़ नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उनके लिए, 'अप्रतिबद्ध विहारी' ऐसा शब्द प्रयोग हुआ है।

दादाश्री : हाँ, हम निरंतर अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से निरंतर अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष! वर्ल्ड में दर्शन करने योग्य होंगे।

संपूर्ण रूप से भीख रहित

वहाँ भक्त और भगवान अभेद

लौकिक धर्म में, आप कहें 'बापजी हमारा ऐसा कर दीजिए' तब ऐसा कहने पर तो बापजी खुश हो जाएँगे। मगर ऐसा चलता है, क्योंकि बिना अहंकार के तो जीया ही कैसे जाए? मगर लक्ष्मी या विषय, धर्म में प्रवेश नहीं करने चाहिए। यदि मैं लक्ष्मी ग्रहण करूँ तो लोग भी भिखारी और मैं भी भिखारी, क्या फर्क रह गया फिर 'ज्ञानीपुरुष' में और लोगों में? अर्थात् 'ज्ञानीपुरुष' तो किसी चीज़ के भिखारी नहीं होते। उन्हें किसी चीज़ की इच्छा नहीं होती, मान की भीख, लक्ष्मी की भीख, विषयों की भीख, कीर्ति की भीख, शिष्यों की भीख, किसी भी प्रकार की भीख नहीं होती। जब किसी भी प्रकार की भीख नहीं रहती तब उसे भगवान पद प्राप्त होता है। जहाँ किसी भी प्रकार की भीख रही है वहाँ भगवान और भक्त जुदा है और जहाँ किसी भी प्रकार की भीख नहीं है वहाँ भगवान और भक्त एक हो जाएँ, अभेद हो जाएँ।

जगत् की सत्ता कहाँ झूके?

जगत् में कितने प्रकार की भीख होगी? मान की भीख, लक्ष्मी की भीख, विषयों की भीख, शिष्यों की भीख, मंदिर बाँधने की भीख, अपमान की भीख। हर तरह की भीख, भीख और भीख। वहाँ फिर दरिद्रता कैसे मिटेगी?

जहाँ किसी भी प्रकार की भीख हो, भाँत-भाँत की इच्छाएँ रही हो, वह भगवान कैसे कहा जाए? भगवान तो निरिच्छ होते हैं। उन्हें निरंतर समाधि होती है।

जिसकी तमाम प्रकार की भीख छूट गई, उसके हाथों में इस जगत् की सारी सत्ता आ जाती है। इस समय मेरे हाथों में आ गई है। क्योंकि मेरी सर्वस्व प्रकार से भीख छूट गई है। जब तक ऐसे निर्वासनिक पुरुष नहीं मिले तब तक सच्चा धर्म प्राप्त नहीं होता है। ऐसे पुरुष तो कभी-कभार ही मिलते हैं, और तब हमारा मोक्ष का काम बन जाता है।

जो प्योर हुए हैं, वही प्योर बोल पाएँ

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार केवल आप ही कहते हैं, अन्य कोई ऐसा बोलता नहीं है।

दादाश्री : हाँ, मगर प्योर हुआ हो तो ही बोलेगा न! वर्ना दूसरे कैसे बोल पाएँगे? उन्हें तो इस दुनिया की लालचें चाहिए और इस दुनिया के सुख चाहिए, वे क्या बोलेंगे? अर्थात् प्योरिटी होनी चाहिए। यदि संसार की सारी चीज़ें हमें दें तो हमें उसकी ज़रूरत नहीं है, सारे संसार का सोना हमें दें तो भी उसकी हमें ज़रूरत नहीं है। सारे संसार का धन हमें दें तो उसकी भी हमें ज़रूरत नहीं है। हमें स्त्री संबंधी विचार ही नहीं आता। अर्थात् इस जगत् में किसी प्रकार की भीख हमें नहीं है। आत्मदशा साधना यह कोई आसान बात थोड़े ही है?

भीख जाने पर इस पद की प्राप्ति

यह ज्ञान प्रकट हुआ तब मुझे भी उल्लास

आया कि कैसा अजायब ज्ञान है! गज़ब की सिद्धियाँ प्रकट हो गई हैं!

किसी भी प्रकार की भीख नहीं होने के कारण यह पद हमें मिला है। सर्वश्रेष्ठ पद, जो सारे ब्रह्मांड में सबसे बड़ा पद है, वह हमें प्राप्त हुआ है।

फिर भी यह 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है। और अब इस पद के आधार पर आपको भी वही दशा प्राप्त हो सकती है। जिसका निदिध्यासन करें उस रूप आप हो जाएँ। ऐसे ज्ञानी कभी-कभार ही होते हैं, ऐसा कभी होता नहीं है और हुआ है तो अपना मोक्ष का काम निकाल लीजिए।

निरिच्छुक

इच्छा से खड़े अंतराय

प्रश्नकर्ता : हमें जिस वस्तु की बहुत इच्छा हो वह वस्तु नहीं मिले तो उसका दु:ख रहता है।

दादाश्री : जिसकी बहुत इच्छा हो वह वस्तु मिलेगी तो ज़रूर, लेकिन बहुत इच्छा करने पर वह देर से मिलती है। और इच्छा कम हो जाए तब जल्दी प्राप्त हो जाती है। इच्छा अंतराय करती है।

प्रश्नकर्ता : जिस वस्तु की हमें इच्छा हो क्या वह हमें मिलती ही नहीं?

दादाश्री : मिलती है, किंतु इच्छा के कम होने पर फिर प्राप्ति होती है। इच्छित वस्तु प्राप्त तो होगी ही, किंतु इच्छा करना ही अंतराय है। ज्यों-ज्यों इच्छा कम होती जाए त्यों-त्यों अंतराय टूटते जाएँ। उसके बाद सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती जाए। जो प्राप्त होनेवाला हो, उसकी पहले इच्छा खड़ी होती है। अंतराय टूटने पर फिर इच्छानुसार प्राप्ति होती है। हमें एक भी अंतराय क्यों नहीं है? क्योंकि हमारी संपूर्ण निरिच्छ दशा है।

हमें इच्छा ही नहीं होती। इच्छा दो प्रकार की, एक डिस्चार्ज इच्छा और एक चार्ज इच्छा, चार्ज इच्छा से नया हिसाब बँधता है। डिस्चार्ज इच्छा मतलब, उदाहरण के तौर पर, अभी भूख लगी हो तो मनुष्य खाने की ओर देखेगा, इसलिए आप समझ जाएँ कि इसे इच्छा हुई है, मगर वह डिस्चार्ज इच्छा कहलाए। हमें ऐसी कोई डिस्चार्ज इच्छा हुई हो तो वह वस्तु तुरंत ही हमें प्राप्त होती है। हमें प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अंतराय इतने टूट गए हैं, कि हरएक वस्तु इच्छा होने के साथ ही तुरंत आ मिलती है। इसे निरंतराय कर्म कहते हैं।

अस्त होती इच्छा तो ज्ञानी को भी होती है

हम निरिच्छुक कहलाएँ, कि जिन्हें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं है अब। किंतु फिर भी, कभी दोपहर के डेढ़ बजने पर भी खाना नहीं आए, तब रसोई की ओर ज़रा देख लें कि आज खाना क्यों नहीं आ रहा है? ऐसा किस लिए देखते हैं? तब कहे, 'खाने की इच्छा से देखते हैं।' अरे, निरिच्छ को किस की इच्छा है? खाने की इच्छा है। ये सारी डिस्चार्ज इच्छाएँ हैं। वे भाव डिस्चार्ज हैं, सूर्य-नारायण उगते और अस्त होते समान ही दिखाई देते हैं, मतलब अस्त होते समय भी वैसे ही दिखाई देते हैं। वैसे ही, ये इच्छाएँ अभी थोड़ी देर में अस्त हो जाएगी।

संपूर्ण निरिच्छ दशा ज्ञानी की

इच्छा परवशता है। जगत् में यदि कोई निरिच्छ पुरुष है, तो वह 'ज्ञानीपुरुष' ही होते हैं। निरिच्छ मतलब जिसे किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रही हो। लक्ष्मी की इच्छा नहीं हो। विषयों का जिन्हें विचार नहीं आता। मान-अपमान की जिन्हें परवा नहीं होती। कीर्ति की, शिष्यों की, मंदिर बाँधने की जिन्हें भीख नहीं होती। देह का स्वामित्व भी छूट गया होता है। ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' हमें निरिच्छ बनाते हैं।

निज उपयोग में कब रह पाए? जब सारी इच्छाएँ मंद हो जाएँ, तब। जब कभी भी उन्हें मंद तो करनी ही होगी न? किंचित् मात्र इच्छा है, वह भीख है। हम संपूर्ण निरिच्छ हुए हैं तभी यह ज्ञानीपद प्राप्त हुआ है। अंतराय टूटने पर अपनी इच्छानुसार प्राप्ति होती है, सहज ही सब इच्छानुसार हो जाता है।

मोक्ष में जानेवाले की सारी की सारी इच्छाएँ पूर्ण होने पर ही वह मोक्ष में जा पाएँ।

'ज्ञानीपुरुष' को किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती है इसलिए उनका निरंतराय पद होता है। हरएक वस्तु साहजिक रूप से आ मिलती है। भिखारीपन छूट जाए तो आप खुद ही परमात्मा हैं। भिखारीपन से ही बँधन है।

निरंतराय पद

इच्छा से अटका आत्मऐश्वर्य

आप खुद परमात्मा हैं, लेकिन उस पद का आपको लाभ नहीं मिलता, क्योंकि निरे अंतराय (बाधाएँ) हैं। 'मैं चंदुभाई हूँ' बोलते ही अंतराय पड़े। क्योंकि (अंदरवाले) भगवान कहते हैं कि, 'तू मुझे चंदु कहता है?' ऐसा नासमझी में बोलने पर भी अंतराय पड़ते हैं।

मनुष्य तो परमात्मा है, अनंत ऐश्वर्य प्रकट हो सके ऐसा है। किंतु इच्छाओं के कारण वह मनुष्य हो गया है। वर्ना, 'खुद' जो चाहे सो प्राप्त कर सके ऐसा है। लेकिन अंतराय के कारण प्राप्त नहीं कर सकता है। भगवत् शक्ति में जितने अंतराय होते हैं उतनी वह शक्ति आवृत्त होती है। वर्ना भगवत् शक्ति मतलब, जो भी इच्छाएँ की जाएँ वे सभी चीज़ें सामने आएँ। उसमें जितने अंतराय पड़े उतनी शक्ति आवृत्त होती है।

निरंतराय पद, ज्ञानी को

हमें अंतराय होता नहीं है। निरंतराय पद में हैं हम। सभी वस्तुएँ हमारे सामने तैयार रखीं होती है। उस वस्तु का विचार हमने किया नहीं है फिर भी हाज़िर होती है। और आपको इस प्रकार क्यों नहीं मिलता? क्योंकि आपने अंतराय डाले हैं। 'इसका मुझे पता नहीं है', मुझसे ऐसा नहीं होता', 'मुझे यह नहीं चाहिए', 'मुझे यह पसंद नहीं है' आदि, इस प्रकार अपने रोज़ाना जीवन व्यवहार में ऐसे शब्दों का प्रयोग करके खुद ही अंतराय डाले हैं। फिर वह वस्तु भी कहेगी 'आपको पता नहीं है, पसंद नहीं है, तो चूप होकर बैठे रहिए न, उसमें मेरा अपमान क्यों करते हैं?' ये जो भी वस्तुएँ हैं वे सारी मिश्रचेतन की बनी है। ये सारी वस्तुएँ जो हैं वे केवल परमाणु नहीं हैं, वे तो पुद्‌गल है। और उसका भी यदि आप कभी द्वेष करेंगे तो उसका फल आपको भुगतना पड़ेगा। 'यह फ़र्निचर मुझे पसंद नहीं आया' कहेंगे, तब फ़र्निचर कहेगा 'तेरा और मेरा अंतराय', फिर से वह फ़र्निचर नहीं मिलेगा, ऐसा नियम है। यह तो लोगों ने खुद ही अंतराय खड़े किए हैं।

खुद के ही खड़े किए हुए अंतराय हैं सर्वत्र। प्रत्येक शब्द द्वारा अंतराय डालते हैं। बिलकुल नेगेटिव बोले उससे अंतराय पड़ते हैं और पोझिटिव से अंतराय नहीं पड़ते।

अंतराय अर्थात्, अपनी धारणा के अनुसार सफल नहीं होना। वर्ना इच्छा होने के साथ ही सब हाज़िर हो ऐसा है। तब कोई पूछे कि, 'क्या इसमें कोई भी पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता?' तो जवाब है, 'नहीं करना पड़ता। सिर्फ इच्छारूपी पुरुषार्थ, यानी सिर्फ इच्छा ही होनी चाहिए।' यदि हमारी बात करें, तो हमें तो ज्यादातर सबकुछ इच्छा होने के साथ ही सामने हाज़िर मिलता है। अत: इच्छा नहीं होने पर भी सब वस्तुएँ मिला करती हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने 'ज्यादातर' के बारे में बताया, तो शेष जो रहा उसका क्या?

दादाश्री : उसकी हम परवा नहीं करते। इच्छा होने पर यदि नहीं मिले, तो फिर देर से मिले। देर से मतलब दो-तीन दिन के बाद आ मिले। लेकिन तब भी हमारा काम चल जाता है। और वह जो तुरंत आ मिले, वह ऐसे कि यदि ऐसी इच्छा हुई कि 'वहाँ जाना है', तो उससे पहले ही किसी की गाड़ी आकर खड़ी रही हो।

प्रश्नकर्ता : नहीं, मुझे यह जानना था कि आपको शत प्रतिशत ऐसा क्यों नहीं मिलता? आपने 'ज्यादातर' क्यों कहा?

दादाश्री : शत प्रतिशत वैसा नहीं मिलता, उतने हमने भी अंतराय डाले थे, थोड़े मंद अंतराय। वर्ना हमें भी ऐसा कुछ नहीं होता, मगर थोड़े से अंतराय हैं। किंतु इस काल में ज्यादातर सब इच्छा होते ही प्राप्त होना वह क्या कम है? यह तो अस्सी प्रतिशत मार्क मिले हैं। आपने सब देखा न? हमारी सारी ज़रूरतें सामने से आ मिलती हैं न?

प्रश्नकर्ता : अंतराय तोड़ने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञानीपुरुष तो खुद निरंतराय पद में रहते हैं। कोई अंतराय ही नहीं। इसलिए उनके पास बैठने से सारे अंतराय टूट जाएँ, केवल पास बैठने से ही ऐसा हो जाए। अरे, उनके साथ गप्प लडाएँ तो भी ऐसा हो जाए!

सारे अंतराय तोड़ने का मैंने रास्ता कर दिया है आपको। ये जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं न, इससे सारे अंतराय टूट जाएँगे, इसलिए समभाव से निपटारा कीजिए।

निरालंब

निरालंब दशा वही ऐब्सॅलूट स्थिति

मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति की इच्छा तो बहुत है, किंतु मोक्ष का रास्ता नहीं मिलता। इसलिए अनंत अवतार से भटकना ही हुआ है, और बिना अवलंबन के जीया नहीं जाता है इसलिए आधार खोजते हैं। क्योंकि मनुष्य निरालंब नहीं रह सकता न? ज्ञानीपुरुष के अलावा दूसरा कोई निरालंब नहीं रह सकता, कोई न कोई अवलंबन अवश्य खोजेगा!

केवल ज्ञानीपुरुष आधारित नहीं होते, निरालंब होते हैं। उन्हें कोई अवलंबन नहीं होता। जगत् के लोग अवलंबन से जी रहे हैं, आधार से जी रहे हैं और जब उस आधार का निराधार होता है तब कल्पांत करते हैं। ज्ञानीपुरुष खुद ऐब्सॅलूट (पूर्ण) हुए होते हैं, इसलिए आधार-आधारी संबंध उनको नहीं होता।

जगत् में केवल ज्ञानी को किसी वस्तु का आधार नहीं होता, आत्मा का ही आधार होता है, जो निरालंब है!

ज्ञानी मरते ही नहीं। वह तो देह मरती है। वह अवलंबन मेरा होता ही नहीं न? हम निरालंब होते हैं। इस देह का, पैसों का, आदि ऐसा कोई भी अवलंबन नहीं होता।

आत्मा निरालंब है, उसे किसी आधार की ज़रूरत नहीं है। उसे किसी के अवलंबन की ज़रूरत नहीं पड़ती। आत्मा तो, घरों के आरपार निकल जाए ऐसा है, पहाड़ के आरपार निकल जाए ऐसा है। सारा जगत् अवलंबनवाला है। चारों गति के जीव अवलंबन में ही डूबे हुए हैं। निरालंब को स्वतंत्र कहा, ऐब्सॅलूट कहा।

यह निरालंब दशा, 'ज्ञानी' की

प्रश्नकर्ता : आपकी जो दशा है उसे हम देखते हैं मगर हमें ऐसा ख्याल में नहीं आता है कि परम ज्ञान की स्थिति में जो दशा होती है वह दशा कैसी होती है?

दादाश्री : हाँ, वह दशा हम ही जानते हैं। मैं समाधि से बाहर निकलता ही नहीं हूँ। इस समय भी मेरी समाधि निरंतर बनी हुई है। यह ए.एम.पटेल

वह मैं नहीं हूँ, यह अहंकार भी मैं नहीं हूँ, यह चित्त भी मैं नहीं हूँ, सभी चीज़ों के पार मैं हूँ। शुद्धात्मा (शब्दावलंबन के रूप में) भी मैं नहीं हूँ। शुद्धात्मा तो ये लोग (दादाश्री के ज्ञान प्राप्त किए हुए महात्मा) हुए हैं। मैं तो शब्दरूप भी नहीं हूँ। मैं दरअसल स्वरूप में हूँ, निरालंब स्वरूप में ही हूँ, मगर चार डिग्री की कमी है। मेरी वह कमी पूरी नहीं हुई है, तब तक मेरी क्या इच्छा है? कि जो सुख मैंने पाया है वैसा ही सुख लोग पाएँ, इतनी इच्छा रही है।

आपको शब्द का अवलंबन है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह अवलंबन है। हमें शब्द का अवलंबन भी नहीं होता। आप भी निरालंब स्थिति में आए हैं, बहुत बड़ी स्थिति कहलाए, यह पद तो देवताओं को भी नहीं होता है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनिओं ने भी नहीं पाया हो, ऐसा पद है यह। इसलिए अपना मोक्ष का काम निकाल लेना।

निरालंब स्थिति मैं भोग रहा हूँ, बहुत समय से मैं इस स्थिति का अनुभव कर रहा हूँ। इसमें किसी अवलंबन की ज़रूरत नहीं पड़ती। और जगत् के लोग तो, यदि रात में अकेला रहना हो तब भी किसी का साथ खोजते हैं। अकेले हों तो उन्हें नींद तक नहीं आती।

हम बिलकुल निरालंब होते हैं। हमारी निरालंब परिस्थिति है, फिर भी सभी के साथ रहता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ, चलता हूँ, फिरता हूँ, सबकुछ करता हूँ। सबकुछ होते हुए भी मनुष्य निरालंब हो सकता है। यह अक्रम विज्ञान ऐसा है कि आप निरालंब हो पाए। इसलिए, जिसकी भावना हो वह ऐसी स्थिति पा सकता है।

रिलेटिव से ऐब्सॅलूट की ओर

कोई भी अवलंबन नहीं रहे ऐसे निरालंब हुए हैं हम, इसलिए आप चाहे हम पर कोई भी प्रयोग करें फिर भी वह हमें स्पर्श (असर) नहीं करता। वह अवलंबनवाले को स्पर्श करे, जैसे कि, मैं चंदुभाई हूँ, फलाँ हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, आदि यह भी अवलंबन कहलाए।

कोई हमारा बॉस नहीं और अन्डरहैन्ड भी नहीं। बस निरालंब, अवलंबन नहीं किसी प्रकार का। अवलंबन जो है वही बंधन है। यह देह होने पर भी हम निरालंब स्थिति को देख सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं और बंधन स्थिति का भी अनुभव कर सकते हैं। दोनों स्थितियों का अनुभव कर सकते हैं। निरालंब होना, वह अंतिम बात है! तभी मोक्ष कहलाए।

हम निरालंब स्वरूप में हैं इसलिए जगत् की कोई चीज़ हमें छूती नहीं है, बाधक भी नहीं है। इस स्थिति की वजह से हमारा कहीं मतभेद नहीं होता, कुछ भी नहीं होता! क्योंकि किसी अवलंबन की ज़रूरत ही नहीं है! हमारी दशा निरालंब! इस पर से हम समझ सकते हैं कि यदि हम अपनी इस दशा में भी निरालंब रह सकते हैं, तब फिर वीतराग (तीर्थंकर) कितने निरालंब होकर रहते होंगे?

स्वभाव को लेकर निरालंब

मैं इस समय निरालंब स्थिति में हूँ, इसके बावजूद अवलंबन भी है और निरालंब भी हूँ, निरालंब स्थिति का अनुभव मैं कर सकता हूँ।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 'मुझे अवलंबन भी है और मैं निरालंब भी हूँ', तो आपको किस का अवलंबन होता है?

दादाश्री : आप सभी का।

प्रश्नकर्ता : देह का अवलंबन भी है न, दादाजी?

दादाश्री : देह का अवलंबन कोई खास नहीं है। जितना आपका अवलंबन है उतना इस देह का नहीं है। क्योंकि मेरा ध्येय है कि मैंने जो सुख पाया है वह आप सभी को प्राप्त हो और जल्दी से प्रकट

हो। इसमें देह का तो कोई अवलंबन नहीं है। देह तो पड़ोसी के तौर पर, फर्स्ट नेबरर के तौर पर है। उसका टाइटल मैंने फाड़ दिया है (उसका मालिकानापन छूट गया है) अर्थात् मैं मन का मालिक नहीं हूँ, इस देह का मालिक नहीं हूँ और वाणी का भी मैं मालिक नहीं हूँ।

केवल ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंद, वही परम ज्योति है। कैवल्य ज्योति, मिलावटवाली नहीं, निर्मल परम ज्योति है और उस ज्योति को हमने देख लिया है (अनुभव किया है) और निरालंब हो गए हैं। फिर भी आलंबन में रहते हैं। वर्ना अंतिम बात, ठेठ की बात बाहर नहीं पड़ती। यह ठेठ की बात आज बाहर पड़ी।

प्रश्नकर्ता : 'निरालंब रहते हैं फिर भी आलंबन में है', इसका ज़रा ज्यादा स्पष्टीकरण कीजिए न।

दादाश्री : हम अपने स्वभाव को लेकर निरालंब रहते हैं और विशेषभाव में अर्थात् यह जो देहभाव है उसमें अवलंबन है। वह (जो देहभाववाला है) अवलंबनवाला रौब जमाता हो तब 'हम' निरालंब हो जाएँ, बस। जब तक रौब नहीं जमाए (पुद्‌गल का आधार नहीं ले) तब तक अवलंबन में रहें, वह रौब जमाए कि हम निरालंब हो जाएँ। उससे कहें कि 'बस, बहुत हो गया। मुझे नहीं चाहिए।' रौब जमाने का मतलब समझ गए न?

निज आधार जिन्हें प्राप्त हुआ है वे सभी ज्ञानी हैं, वे निरालंब हो सकते हैं। 'मुझे पुद्‌गल के अवलंबन की ज़रूरत नहीं है, उस अवलंबन के बगैर मैं पार उतरूँगा' ऐसा तय कर लिया है, किंतु फिर भी अभी पुद्‌गल का अवलंबन लेना पड़ता है, वह अभी पिछला सारा हिसाब शेष रहा है उसकी वजह से है। किंतु यह तय हो गया है कि पुद्‌गल का अवलंबन नहीं रहा तो चलेगा इसलिए वह निरालंब होने लगेगा। पुद्‌गल का अवलंबन नहीं ले वह परमात्मा और पुद्‌गल के आधार पर जीए वह मनुष्य (जीवात्मा)।

ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं। एक, जिन्होंने शुद्धात्मा स्वरूप प्राप्त किया हो और उसके अनुभव में ही रहते हों। मगर शुद्धात्मा स्वरूप का अवलंबन शब्द से होता है। दूसरे प्रकार के ज्ञानी निरालंब होते हैं। तीर्थंकर निरालंब होते हैं। इसके बावजूद हम निरालंब हैं। हमें शुद्धात्मा स्वरूप, शब्द में नहीं है। हम निरालंब आत्मा में हैं, जिसे कोई अवलंबन ही नहीं है। पहलेवाला शब्द का अवलंबन और यह (हमारा) निरालंब है। ग्यारहवाँ आश्चर्य है यह!

नापास हुए तीर्थंकर

हमें अवलंबन नहीं होता। ऐसा इस काल में देखने को मिला न! निरालंब! राग-द्वेष से रहित जीवन देखने को मिला। गुस्सा होने पर भी क्रोध नहीं कहलाए, परिग्रह होने पर भी अपरिग्रही ऐसा हमारा जीवन (आप सबको) देखने को मिला।

मैं निरालंब आत्मा में स्थित हूँ, जैसा तीर्थंकरों का निरालंब आत्मा था, शब्द का भी अवलंबन जिन्हें नहीं होता ऐसा निरालंब आत्मा। अनुत्तीर्ण हुए तीर्थंकर ही कहिए न!

कैवल्यज्ञान स्वरूप

अंत में विज्ञान स्वरूप

परमात्मा निरालंब है और इग्ज़ैक्ट परमात्मा है। जहाँ कोई भी अवलंबन नहीं है, जहाँ कुछ भी नहीं है। जहाँ राग-द्वेष या शब्द, कुछ भी नहीं है। कोई शब्द ही नहीं है वहाँ पर। निरा आनंद ही है, सोचते ही आनंद उत्पन्न हो जाए। हमने जो आत्मा देखा है वह कैवल्यज्ञान स्वरूप आत्मा देखा है। मतलब यह कि वहाँ श्रद्धा भी नहीं है, वहाँ कैवल्य है, कैवल्यज्ञान वही निरालंब आत्मा। यानी कैवल्यज्ञान देखा हमने, किंतु हमें निरंतर बरता नहीं।

कैवल्यज्ञान का आज वर्तमान में, व्यवहार में जो अर्थ चल रहा है ऐसा अर्थ नहीं है उसका। कैवल्यज्ञान हमने देखा, और वह (व्यावहारिक) अर्थ झूठा निकला। कैवल्य है जहाँ पर, जहाँ 'कैवल्यज्ञान' यह शब्द तक नहीं है, अवलंबन नहीं है ऐसा उपयोग, ऐब्सॅलूट ज्ञान मात्र!

जगत् कल्याण की भावना भले ही रही हो मगर खुद हुए हैं ऐब्सॅलूट। ऐब्सॅलूट यानी निरालंब। किसी अवलंबन की ज़रूरत नहीं उनको! स्वतंत्र कैवल्य, कैवल्य ही, अन्य कोई मिलावट नहीं।

बरते वर्तमान में सदा

वर्तमान में रहना यही व्यवस्थित

मैं आपसे कहता हूँ कि वर्तमान में रहना सीखिए।

आप सभी को वर्तमान में रहने के लिए सारे रक्षण दिए हैं और हम बिना रक्षण के रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वर्तमान में कैसे रहा जाए?

दादाश्री : भूतकाल को भूला देने पर! भूतकाल तो गया, उसे आज याद करें तो क्या हो? वर्तमान का मुनाफ़ा खो दें और (बीती बातों का) जो घाटा है सो तो है ही।

भविष्यकाल तो व्यवस्थित के हवाले किया, और भूतकाल तो हो चूका है। अब आप कहेंगे, 'भूतकाल की जो भी फाइलें रही हों उसका इस समय निपटारा नहीं करना है क्या?' तो जवाब है, 'नहीं। वे फाइलें याद आए तब उसे कह देना कि रात को दस-ग्यारह के बीच आना। एक घंटे का समय रखा है, उस समय आना ताकि निपटारा कर देंगे, किंतु इस समय नहीं।' इस समय तो, यदि पैसों का नुकसान हो रहा हो तब भी वर्तमान नहीं गँवाना चाहिए। अर्थात् कहाँ रहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : वर्तमान में।

दादाश्री : हाँ बराबर है। 'थोड़ी देर पहले आपने मुझसे ऐसा कहा', इस प्रकार उस बात को यदि मैं याद करूँ तो इस समय जो वर्तमान है उसे भी खो दूँगा। जो हो गया सो हो गया, उसका निपटारा वहाँ उसी समय कर डालना।

उदाहरण के तौर पर, बाहरगाँव जाना था और आज की तारीख का केस था, बहुत जल्दी थी। किंतु स्टेशन पहुँचे कि गाड़ी छूट गई और आप नहीं जा पाए। अब, वह हो गया भूतकाल। और अब कॉर्ट में क्या होगा वह है व्यवस्थित के ताबे में, इसलिए आप वर्तमान में रहें! हमें तो ऐसा पृथक्करण तुरंत ही हो जाता है। हमें 'ऑन द मोमेन्ट' सारा ज्ञान वहाँ पर हाज़िर हो जाए, आपको ज़रा देर लगेगी।

प्रश्नकर्ता : आपके साथ पहले एक बात हुई थी कि, 'व्यवस्थित एट-ए-टाइम हाज़िर रहना चाहिए।'

दादाश्री : पूरा ज्ञान, पाँचों वाक्य (पाँच आज्ञा) हाज़िर रहने चाहिए। जो हाज़िर रहे, वही ज्ञान कहलाए।

प्रश्नकर्ता : हम जानना चाहते हैं कि हमारी ऐसी कौन-सी भूल है जिससे एट-ए-टाइम हाज़िर नहीं रहता और बाद में याद आता है? फिर समभाव से निपटारा कर पाते हैं। इस बाबत पर थोड़ा समझाइए न।

दादाश्री : इसमें मूल वस्तु, यानी व्यवस्थित का मतलब क्या है, कि अब अव्यवस्थित कुछ है ही नहीं, और जो भी है वह व्यवस्थित ही है। हमारी लाइफ में अब सब व्यवस्थित ही रहा है इसलिए उस व्यवस्थित की, मतलब भविष्य की चिंता करनी नहीं होती। भूतकाल भूल जाना है और वर्तमान में रहना, वह व्यवस्थित।

हम आम खाते हों या भोजन लेते हों, उस घड़ी हमें यह सत्संग याद नहीं रहता। आप बाहर

से आए हों और हमें कोई बताए कि 'चंदुभाई आए हैं', तब भोजन करते-करते उस समय वह आपके आगमन का ज्ञान याद आए तो हम उसे कहेंगे 'थोड़ी देर के बाद आना, अभी भोजन कर लेने दीजिए।' आप आए वह तो भूतकाल हो गया। अर्थात् हम वर्तमान में रहें। यदि खाना आया, आम आए तो आराम से थोड़ा खाएँगे मगर चबा-चबाकर.....।

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक।

दादाश्री : हाँ, दूसरा कुछ नहीं, वर्तमान में ही, हम वर्तमान में रहें। इसलिए लोग कहते हैं, 'दादाजी, आप टेन्शन रहित हैं।' मैं कहूँ, 'काहे का टेन्शन? वर्तमान में रहनेवाले को टेन्शन होता होगा कहीं!' टेन्शन तो, जो भूतकाल में खो जाए उसे होता है, भविष्य की चिंता का पागलपन करे उसे होता है, हमें कैसा टेन्शन?

वर्तमान में रहे, उसे भगवान ने 'ज्ञानी' कहा। 'वर्तमान में बरते सदा सो ज्ञानी जग मांही!' यानी निरंतर वर्तमान में बरतते रहें। इसलिए मैं वर्तमान में रहता हूँ और आपको वर्तमान में रहना सिखलाता हूँ। और फिर यह नियम से है। भगवान ने वर्तमान में रहने को ही कहा है।

वीतरागता

कर्त्ता नहीं, केवल ज्ञाता

प्रश्नकर्ता : आपका जब एक्सिडन्ट हुआ था तब आपकी जो आंतरिक दशा देखने को मिली, तब हमें लगा कि भगवान महावीर को उपसर्ग के समय जो परिणति रही होगी उसकी झलक हमें देखने को मिली है। किंतु जिन्हें दादा का ज्ञान नहीं है वे लोग इसके बारे में पूछें तो हम क्या बताएँ, यह समझ में नहीं आता है?

दादाश्री : बाहर के लोगों को क्या असर हुआ है?

प्रश्नकर्ता : आप आम तौर पर कहा करते हैं कि 'हम ज्ञानी हैं, चाहे सो माँग लें।' तो फिर (आत्मज्ञान नहीं लिया ऐसा) कोई पूछे कि यदि ज्ञानी इतना कुछ कर सकते हैं तो फिर यह जो अकस्मात हुआ उसमें वो क्यों कुछ नहीं कर सकें?

दादाश्री : वो कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि वो खुद अलग हैं। हाँ, वस्तुस्थिति में जो हुआ है उससे वो खुद अलग हैं। मतलब, वस्तु के लिए वो यदि कुछ करने जाएँ तो वह 'राग' कहलाए और नहीं करने पर 'द्वेष' कहलाए। अर्थात् 'करना-नहीं करना' ऐसा उनको नहीं होता। देखा ही करते हैं बस।

राग में वीतराग

जगत् ने इस दुषमकाल में, ज्ञानिओं का समभाव देखा नहीं है, समभाव और राग की स्थिति में भी वीतराग रहते हैं। किंतु लोग तो उन्हें वीतरागता में ही वीतराग रूप से देखना चाहते हैं। अरे! ऐसा संभव नहीं है, राग में वीतरागता हो वही सच्ची वीतरागता। तब जगत् के लोग, बिना राग के वीतरागता करने में लग गए। अरे, दूज तो हुई नहीं है, किस आधार पर वीतराग होने निकल पड़े हैं? आधार तो कोई चाहिए या नहीं चाहिए? कहते हैं, सारे राग छोड़ दीजिए, मगर वीतरागता कहाँ से लाएँगे? ज्ञानी पर राग हुआ तो वह प्रशस्त राग है, वही मोक्ष में ले जाएगा। जो आपका पगला राग था, अप्रशस्त राग था, वह ज्ञानी के मिलन से प्रशस्त हो गया। वही मोक्ष में ले जाएगा।

निरंतर वीतराग दशा

'ज्ञानीपुरुष' निरंतर शुद्ध उपयोग में ही होते हैं। 'ज्ञानी' निर्ग्रंथ होते हैं इसलिए क्षणभर के लिए भी उनका उपयोग कहीं भी अटकता नहीं है। ग्रँथिवाला तो, मन की गाँठ फूटने पर पाव घंटा, आधा घंटा एक ही वस्तु में रमणता करता है, 'ज्ञानी' क्षणभर के लिए कहीं अटकते नहीं इसलिए उनका

उपयोग निरंतर ही रहता है, उनका उपयोग (आत्मा के) बाहर नहीं होता है। 'ज्ञानी' गृहस्थदशा में रहते हैं किंतु गृहस्थी नहीं होते, निरंतर वीतरागता यही उनका लक्षण!

प्रश्नकर्ता : हम आपसे प्रश्नोत्तरी करें तब आप किस में होते हैं?

दादाश्री : हम उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहें, वही हमारा उपयोग। ये शब्द जो निकलते हैं, वह रिकार्ड बोलता है। उससे हमारा कोई लेना-देना नहीं है। उस पर उपयोग रहने पर हमें पता चल जाए कि कहाँ भूल हुई और कहाँ पर उपयोग नहीं रह पाता। जैसे कि, जब आप कोई रिकार्ड सुनें तब आपको कैसे स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है कि इस रिकार्ड में यह भूल है और दूसरा यह सही है। वैसे ही, हमारा वाणी रूपी 'रिकार्ड' बज रहा हो तब हमें ऐसा रहता है।

जैसे भाव वैसा फल

प्रश्नकर्ता : आप हमें विधि करवाते हैं, उसमें क्या प्रदान करते हैं?

दादाश्री : हम कुछ देते नहीं है और न ही कुछ स्वीकार करते हैं। हम वीतराग होते हैं। इसलिए आप जो कुछ दें वह सौ गुना होकर आपको वापस मिले। आप यदि एक फूल दें तो आपको सौ मिलें और यदि एक पत्थर फेंकें तो वह भी सौ मिलें।

प्रश्नकर्ता : आप जो कृपा बरसाते हैं वह क्या है?

दादाश्री : वह भी यही है। जैसा भाव आप रखें उसका सौ गुना होकर आपको वापस मिले।

जहाँ संपूर्ण वीतरागता, वह भगवान

आप जब से हमें मिले हैं तब से ही आपको वीतद्वेष किया है। अब ज्यों-ज्यों फाइलों का निपटारा होता जाएगा, त्यों-त्यों आप वीतराग होते जाएँगे। सभी फाइलों का निपटारा हो गया तो हो गए वीतराग। ज्ञानीपुरुष संपूर्ण वीतराग होते हैं। एक-दो अंश ज़रा कचाई होती है, किंतु संपूर्ण वीतराग ही होते हैं।

ज्यों ज्यों वीतरागता बढ़ती जाए, त्यों त्यों उतने राग-द्वेष रहित होते जाए और उतना मोक्ष हमारी समझ में आता जाए, पूर्ण दशा उत्पन्न होती जाए। संपूर्ण वीतरागता वह भगवान कहलाए।

यदि आपके भाव में अटैक नहीं है तो आप महावीर ही हैं, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। इसलिए जब से मेरे अटैक बंद हो गए तब से मैं अपने आपको महावीर ही मानता था, किंतु किसी से कहता नहीं था। भगवान ने जो कहा है वही वस्तु होगी मेरे पास, अन्य कुछ नहीं।

हाँ, किसी एक की भूल होना संभव है लेकिन वीतरागों की बात को तो गलत कह ही नहीं सकते। हो सकता है लिखनेवाले से भूल हो गई हो, मगर वीतराग की कोई भूल हो ऐसा मैं कतई माननेवाला नहीं हूँ। चाहे कोई मुझसे कितनी ही घूमा-फिराकर बात करें मगर मैंने वीतराग की भूल नहीं मानी है। बचपन से, जन्म से वैष्णव होने के बावजूद मैंने उनकी भूल मानी नहीं है। क्योंकि ऐसे ऊँचे पुरुष, जिनका नाम लेने से ही कल्याण हो जाए।

पौद्गलिक राग से परे वीतराग

ज्ञानी तो वीतराग कहलाएँ। जहाँ ज़रा-सा भी पौद्गलिक राग नहीं है ऐसे वीतराग। वहाँ पौद्गलिक राग-द्वेष नहीं रहे हैं।

ज्ञानी कौन कहलाए कि सांसारिक प्रवृत्ति जिनमें नहीं होती है, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते। वीतराग हुए हों वे 'ज्ञानी' कहलाएँ।

हमें यदि कोई गालियाँ दे तो हम जानें कि

वह ए. एम. पटेल को गालियाँ दे रहा है, पुद्‌गल को गालियाँ दे रहा है। आत्मा को तो वह जान नहीं सकता! पहचान नहीं सकता! इसलिए हम स्वीकार नहीं करते। 'हमें' स्पर्शे ही नहीं (अंदर असर ही नहीं करे), हम वीतराग रहते हैं। हमें उसके प्रति राग-द्वेष नहीं होता। इसलिए, फिर एक-दो जन्म में सब खलास हो जाए।

राग-द्वेष रहित होना, वह चारित्र

जागृति से दर्शन ऊपर उठता है और स्थिरता से चारित्र प्रकट होता है। ज्ञान-दर्शन तो मेरा दिया हुआ है (स्वरूपज्ञान प्राप्ति के समय) और चारित्र मतलब जानना-देखना और स्थिर होना। सारा दिन खुद ने जो किया हो, जो सब होता रहे, उसे जानिए-देखिए और स्थिर रहिए। देखा ही करें, जो हो रहा है उसे देखा ही करें। घाटा आता हो उसे भी देखा करें और मुनाफ़ा हो रहा हो उसे भी देखा करें। बेटा मर जाए तो उसे भी देखा करें, बेटे का जन्म हो तो उसे भी देखा करें। उसमें कोई बाधा नहीं है। केवल देखा करना। राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। क्रिया वही की वही रहेगी। भगवान ने कहा है कि, बाहरी क्रिया, देह की क्रिया वही की वही होती है, अज्ञानी जैसी होती है मगर यदि राग-द्वेष नहीं है तो वह वीतराग धर्म पाया कहलाए। वह चारित्र कहलाए। राग-द्वेष रहित होना उसका नाम चारित्र। हमें किसी भी जगह राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते हैं। धंधे में चाहे कैसा भी नुकसान आया हो, आपके निमित्त से आया हो तो भी नहीं।

यदि सामनेवाला टेढ़ा हो तो भी 'ज्ञानी' उसके साथ 'ऐडजस्ट' हो जाते हैं। 'ज्ञानीपुरुष' का अनुसरण करे तो हर तरह से 'ऐडजस्टमेंट' करना आ जाए। इसका तात्पर्य यह है कि वीतराग हो जाइए, राग-द्वेष नहीं करें। किंतु अंदर कुछ आसक्ति रह जाती है, इसलिए (उन कषायों की) मार पड़ती है।

जैसे ही आकर्षण बंद हुआ, कि वीतरागता प्रकट होती है। अब आपका आकर्षण बंद हुआ है, इसलिए वीतरागता उत्पन्न होगी।

पहले का भरा हुआ माल तो हमारा भी है, मगर हमें आकर्षण नहीं होता, ज़रा-सा भी आकर्षण नहीं। इसलिए उसमें हमें फिर वीतरागता रहती है।

मोह के बाज़ार में संपूर्ण वीतराग

मैं जब शादी में जाता हूँ, तो क्या शादी मुझसे लिपट जाती है? हम जब शादी में जाएँ तो वहाँ पर हम संपूर्ण वीतराग रह पाएँ। जब मोह के बाज़ार में जाएँ तब वहाँ संपूर्ण वीतराग रह पाएँ। भक्ति के बाज़ार में जाएँ तब वीतरागता ज़रा कम हो जाए।

स्टॉर भी नमस्कार करे इस 'वीतराग' को!

अमरीका में महात्मा हमें स्टॉर में ले जाते हैं। तब स्टॉर बेचारा हमें नमस्कार करता रहे कि, 'धन्य है, ज़रा-सी भी दृष्टि बिगाड़ी नहीं है मुझ पर!' सारे स्टॉर में किसी जगह पर दृष्टि नहीं बिगाड़ी। हमारी दृष्टि बिगड़ती ही नहीं वहाँ पर। हम देखेंगे सही, मगर दृष्टि नहीं बिगड़ती। हमें क्या ज़रूरत है किसी चीज़ की? कोई भी वस्तु मेरे काम नहीं आती न! और तेरी दृष्टि बिगड़ जाए?

प्रश्नकर्ता : ज़रूरत हो वह वस्तु खरीदनी पड़े।

दादाश्री : हाँ, हमारी दृष्टि नहीं बिगड़ती। अरे, स्टॉर हमें नमस्कार करे कि 'ऐसा पुरुष देखा नहीं कभी।' फिर स्टॉर के प्रति तिरस्कार भी नहीं है। राग भी नहीं, द्वेष भी नहीं, ऐसे वीतराग!

सुनें शंका ग़ैबी जादू से

एक बार ऐसा हुआ था, जैसे सबके माथे पर हम हाथ रखते हैं वैसे ही एक स्त्री के सिर पर हाथ रखा था। यह देखकर उसके पति के मन में वहम हो गया। फिर कभी उस बहन के कंधे पर हाथ रख दिया होगा, इसलिए उसके पति को फिर वहम हुआ

कि, 'दादा की दृष्टि बिगड़ गई लगती है।' ऐसा उसके मन में घुस गया। मैं समझूँ, कि इस भले आदमी को वहम हो गया है मगर वहम का तो कोई उपाय ही नहीं होता न? वह बेचारा दु:खी होता होगा, ऐसा मुझे लगे। फिर उसने मुझे खत लिखा कि, 'दादाजी मुझे ऐसा दु:ख होता है। ऐसा नहीं करें तो अच्छा है। आप जैसे ज्ञानीपुरुष से ऐसा नहीं होना चाहिए।' फिर जब वह मुझसे मिले तब मेरे सामने देखा करे और उसके मन में ऐसा होता रहे कि 'दादाजी' पर कोई असर दिखाई नहीं देता। फिर दो-तीन दिन के बाद वह फिर से मिला, तब मैंने तो मानों जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो, ऐसे मैंने 'जय सच्चिदानंद' किए। ऐसा पाँच-सात बार हुआ। मगर उसे मुझ में कुछ असर दिखाई नहीं देता इसलिए वह मन में थक गया और उसे घबराहट हुई कि, 'यह क्या है? उन्होंने मेरा खत पढ़ा और फिर भी कोई असर दिखाई नहीं देता?'

अरे, गुनहगार हो उसे असर दिखाई दे। गुनहगार को 'इफेक्ट' होता है। हमें 'इफेक्ट' ही क्यों होगा? जब कि हम गुनहगार ही नहीं हैं। तू चाहे जितने खत लिखे या चाहे सो करे, उसमें मुझे कोई हर्ज नहीं है। खत का जवाब ही मेरे पास नहीं है। मुझमें वीतरागता है। यह तो तू अपने मन से ऐसा समझकर बैठ गया है। फिर वह मुझसे पूछता है, 'क्या आपको कुछ हुआ था?' मैंने कहा, "मुझे क्या होगा? तुझे शंका हुई है। मगर 'मैं' उसमें हूँ ही नहीं न! इसलिए मुझे हर्ज ही नहीं है!" हमारे ऊपर शंका हो उसमें भी हमें हर्ज नहीं है। शंका होना वह सब उनकी खुद की कमज़ोरियाँ हैं। किंतु हमारे पर किसी को शंका हुई, तो क्या वह उसे छोड़ेगी? नींद में भी चैन नहीं लेने देगी। हमारा शुद्ध खाता, इसलिए सभी की शुद्धि कर दें।

इसलिए कविराज ने लिखा है कि,

विपरीत बुद्धि की शंका वे सुनते ग़ैबी जादू से,
दिया नहीं दंड हमें फिर भी, किया नहीं भेद 'मैं'-'तू' का।

कवि ने बहुत भारी वाक्य लिखा है न? कैसी शंका है? सच्ची शंका नहीं है मगर विपरीत बुद्धि की शंका है यह। हम 'ज्ञानीपुरुष' हैं, हम पर भी शंका की? जहाँ हर तरह से नि:शंक होना है, जिस पुरुष ने हमें नि:शंक किया है, उनके ऊपर भी शंका? मगर यह तो जगत् है, इसलिए क्या नहीं कहता? वह शंका फिर मैं सुनता हूँ, वह भी ग़ैबी (अदृश्य) जादू से और फिर वीतरागता से देखता हूँ!

वीतरागता के बावजूद खटपट

हम खटपटिया वीतराग कहलाएँ, संपूर्ण वीतराग नहीं। हम एक ही तरफ से वीतराग नहीं हैं। अन्य सभी ओर से संपूर्ण वीतराग हैं। हम खटपटिया इसलिए कहलाएँ, क्योंकि हम फलाँ से कहें कि 'आइए आपको मोक्ष दिलाएँ।' मोक्ष देने हेतु सारी खटपट कर गुज़रेंगे।

प्रश्नकर्ता : बाहर यही प्रश्न उठता है न कि खुद वीतराग होते हुए यह खटपट किस लिए करते हैं?

दादाश्री : यह खटपट किस हेतु से है? हम ठहरे खटपटिया वीतराग। वीतराग हैं, किंतु कैसे हैं? खटपटिया वीतराग। मगर हम जो बोलें वह लोगों की समझ में नहीं आए तो अब उसका क्या उपाय है?

प्रश्नकर्ता : वह तो दादाजी, जो आपके पास आए और आपको समझे तो उसका मतभेद जाए, मगर यदि आए ही नहीं तो मतभेद बना रहेगा न? तीर्थंकरों के समय में भी ऐसा ही होगा न?

दादाश्री : वह बराबर है, मगर वे खटपट नहीं करते न? और हम खटपट किया करें! हम तो उसे (मोक्षमार्ग से विमुख नहीं हो इसलिए) इधर से भी बचा लें और उधर से इधर बचा लें। और वे (तीर्थंकर) तो केवल बोलें (देशना करें), उतना

ही। सुननेवाले को यदि ठीक नहीं लगे तो वह चला जाए। किंतु हम तो खटपट करें, पास बिठाकर उसे समझाते रहें।

वीतरागों को तो ज़रा-सा भी राग-द्वेष नहीं होता। इसलिए वे खटपट कर ही नहीं सकते। और हमारी तो चार डिग्री कम है इसलिए हममें करने की शक्ति है (उतना डिस्चार्ज अहंकार शेष रहा है)। बस यह इतनी ही झँझट है। यह शक्ति पूरे जोश में काम करें। उनमें (तीर्थंकरों में) करने की शक्ति नहीं है और इनमें (ज्ञानीपुरुष में) शक्ति है, उतना ही फर्क है। क्योंकि हम चार डिग्री पर फेल हुए हैं और तीर्थंकरों की तो पूर्णाहूति हो गई है, इसलिए उन्हें ऐसी बारी कभी नहीं आती है।

हम तो समझाएँ कि, 'ऐसा करना', 'वैसा करना', 'यह मत करना', 'वह मत करना' आदि। और उन वीतरागों को तो ऐसा कुछ भी नहीं होता। उनके दर्शन से ही कल्याण हो जाए। किंतु सच्चे दर्शन से। ऐसे दर्शन करना आना चाहिए। जिसको जैसा आया वैसा उसको लाभ। वे संपूर्ण वीतराग! उनकी वीतरागता को जितनी पहचानी उतना उसको लाभ। वे खुद इन बाबतों में हस्तक्षेप नहीं करते। वाणी सहज भाव से निकलती रहे, बस। मतलब वे खटपटिया नहीं हैं और हम खटपटिया हैं इसलिए खटपट किया करें कि फलाँ व्यक्ति को यहाँ (सत्संग में) लेकर आना। क्योंकि हमें मालूम है कि यह हमारा अंतिम जन्म नहीं है इसलिए हमसे यह सब बोला जाए कि 'आपका कोई मालिक नहीं है, कोई आपको नुकसान पहुँचा सके ऐसा नहीं है।' और वे (तीर्थंकर) ऐसा नहीं बोलते। उन्हें तो, 'जो मोक्ष में जानेवाले हैं वे दर्शन करके मोक्ष पाएँ और जो नहीं पानेवाले हैं वे नहीं पाएँ', ऐसे वीतराग होते हैं। और हमें इतना आग्रह होता है (कि लोग यह ज्ञान पाकर मोक्ष प्राप्त करें) और इसके लिए हम खटपट किया करते हैं।

वीतरागता का प्राकट्य कब और कैसे?

प्रश्नकर्ता : आप जैसी वीतरागता महात्माओं में कब और कैसे उतरेगी?

दादाश्री : ज्यों ज्यों मेरे संपर्क में रहेंगे त्यों त्यों उतरती जाएगी। इसे रटकर सीखना नहीं है, देखकर सीखना है।

लोग आँखों में देखते हैं। लोग, जीव मात्र आँखों में क्यों देखते हैं? क्योंकि 'आँखों में सारे भाव पढ़ सकते हैं', मनुष्य के क्या भाव हैं यह सब पढ़ा जा सकता है। इसलिए लोग समझ जाते हैं। जैसे कि कोई कहेगा, 'इस व्यक्ति को घर में घुसने नहीं देना। उसकी आँखों के भाव बराबर नहीं है, अच्छे नहीं हैं।' इस प्रकार लोग समझ जाते हैं। वैसे ही ज्ञानी की आँखों में वीतरागता के दर्शन होते हैं, कोई राग या द्वेष देखने को नहीं मिलते। किसी तरह के कषाय भाव दिखाई नहीं देंगे, लक्ष्मी की भीख नहीं होती, अन्य कुछ नहीं होता, केवल वीतरागता ही होती है। उसे देखते रहने पर खुद में ऐसा आ जाए, कुछ और इसमें करना नहीं है।

व्यवसाय संबंधी एक बात आपको बताता हूँ, एक बार मैंने एक आदमी से कहा, 'इस (काम) में ऐसा क्या करने का है? नहीं के बराबर चीज़ में तूने इतना समय व्यर्थ गवाँ दिया।' तब वह कहे, 'कैसे करना यह मुझे किसी ने दिखाया नहीं था, वर्ना मैं जल्दी कर देता।' फिर एक दिन मैंने उसे करके दिखलाया तो तुरंत दूसरे दिन उसने कर दिखलाया। वही काम दो महीने से नहीं हो रहा था। मतलब, उस काम की जो कला थी वह उसे दिखला दी। वह भी कला सीख गया और करने लगा।

अर्थात्, ऐसे थिअरेटिकल से दिन नहीं फिरनेवाले, प्रैक्टिकल चाहिए। थिअरेटिकल तो केवल जानकारी हेतु ही है। और प्रैक्टिकल यानी, ज्ञानीपुरुष को देखने से, उनके करीब आने से,

संपर्क में आने से सब प्राप्त हो जाए, सहज रूप से प्राप्त हो जाए।

परिणाम स्वरूप पद तीर्थंकरों का

तीर्थंकरों को तो भावकर्म होता ही नहीं है न! उन्होंने भावकर्म तो पहले किए थे। तीर्थंकर होने के बाद भावकर्म नहीं होते। हमें अभी भावकर्म हैं। इतना ही भाव कि लोगों का कल्याण कैसे करना, बस यही। तीर्थंकरों ने तो जब कल्याण करने के भाव किए थे तभी यह तीर्थंकर गौत्र बाँधा था। इसलिए अब वे केवल तीर्थंकर गौत्र खपाते हैं, डिस्चार्ज ही हुआ करता है, इसलिए उनको केवल करुणा ही होती है।

भगवान महावीर यदि कोई क्रिया कर रहे हों तो वह दिखाई देती हो मगर वो खुद उसमें नहीं होते और मैं इसमें होऊँ (क्योंकि दादाश्री को जगत् कल्याण की भावना अभी भी रही है और महावीर भगवान को सबकुछ पूर्ण हो गया है), मैं कारण में होऊँ और वे कार्य में हों। कार्य यानी पूर्णता हो गई। उनके बोलने से ही कार्य पूर्ण हो सके।

प्रश्नकर्ता : समझा। किंतु मुझे यह प्रश्न होता है कि वीतराग दशा की प्राप्ति के बाद भावना क्यों होती है? वो तो संपूर्ण इच्छा रहित हो जाते हैं न?

दादाश्री : उनको कल्याण करने की भावना नहीं होती। उनकी जो कल्याण करने की भावना थी, उसका वो फल भोग रहे हैं, तीर्थंकर पद मिला है। मेरी कल्याण करने की भावना अभी रही है, इसलिए मैं खटपटिया वीतराग कहलाऊँ और वो सच्चे वीतराग कहलाएँ।

जैसे कि, कोई एक व्यक्ति परीक्षा देने के बाद कभी स्कूल नहीं जाता हो, किंतु फिर भी, परिणाम तो आएगा ही न? उसके नाम से परिणाम आएगा या नहीं आएगा?

प्रश्नकर्ता : आएगा।

दादाश्री : वैसे ही, यह तीर्थंकर के नाम से उन्हें परिणाम आया है, और मैं अभी परीक्षा दे रहा हूँ। इसलिए मुझे ऐसा भाव है कि लोगों का कल्याण हो, मेरा कल्याण हुआ ऐसे लोगों का भी कल्याण हो। उनको ऐसा नहीं होता। उनको, पहले के जन्मों में जो किया था उसका फल आया है। बहुत गहरी बातें हैं ये सभी।

नहीं कोई जल्दी कैवल्यज्ञान के लिए

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर भी, दादाजी पूरे वीतराग कहलाएँ न?

दादाश्री : पूरे वीतराग नहीं कहलाएँ। तीन सौ साठ में चार डिग्री कम...

प्रश्नकर्ता : मगर दादाजी, आप तीन सौ साठ डिग्री पर पहुँचे मतलब फिर पूर्ण वीतराग, बराबर न?

दादाश्री : हाँ। मगर इस काल में वीतराग हो नहीं सकते, इस क्षेत्र में संभव नहीं है इसलिए हम ऐसी जल्दी नहीं करते। हमें जल्दी भी क्या है? हमारा पुरुषार्थ हमने इस तरफ मोड़ा ताकि लोगों को लाभ हो। यदि यहाँ पूर्णता हो सकती तो हम अपना पुरुषार्थ उस तरफ मोड़ते। किंतु ऐसा संभव नहीं है इसलिए वही पुरुषार्थ इस ओर मोड़ दिया।

प्रश्नकर्ता : बहुत पुरुषार्थ करने पर भी क्या इस काल में चार डिग्री की कमी रहेगी ही?

दादाश्री : किंतु पुरुषार्थ करें ही क्यों? जब यहाँ परीक्षा होनेवाली ही नहीं है फिर पढ़ाई क्यों करें? परीक्षा होनेवाली हो तो पढ़ाई करनी पड़े। अभी यहाँ पढ़ाई शुरू करूँ तो लोग कहेंगे कि क्या परीक्षा आई है आपकी? अरे नहीं, परीक्षा को तो अभी बहुत दिन बाकी है। इसलिए क्यों माथापच्ची करूँ?

तीर्थंकरों ने जो आत्मा ज्ञान में देखा था वही अंतिम आत्मा है। और वही आत्मा मैंने देखा है और जाना है। संपूर्ण निर्भय बना सके, संपूर्ण वीतराग रख सके, ऐसा है वह आत्मा, लेकिन अभी मुझे संपूर्ण रूप से अनुभव में नहीं आया। कैवल्यज्ञान नहीं होने के कारण संपूर्ण अनुभव नहीं हो सका, इसलिए उतनी कचाई रह गई है। वह आत्मा तो जानने योग्य है!

हम ये बातें क्यों करते हैं! जानने के लिए करते हैं यह, और वह मैं नहीं करता हूँ। वह भी टेप रिकार्डर बोलता है। यदि मैं बोलूँ तो पकड़ा जाऊँ, और मैं पकड़ में आ सकूँ ऐसा नहीं हूँ। वीतरागों ने क्या किया था? सारे जगत् की वास्तविकताओं को समझ लिया और वीतराग हो गए।

सहजता

सहजता का मतलब ही अप्रयत्न दशा

प्रश्नकर्ता : सहजता की व्याख्या क्या है?

दादाश्री : सहज यानी संपूर्ण अप्रयत्न दशा। मन-वचन-काया कार्य करनेवाले हैं लेकिन प्रयास करनेवाला निकल जाता है। प्रयास करनेवाले की गैरहाज़िरी वही सहज दशा। सहज मतलब पूर्णता, संपूर्ण अप्रयत्न दशा।

'ज्ञानीपुरुष' कौन कहलाएँ? वो, जो निरंतर अप्रयत्न दशा में हो। सारा जगत् प्रयत्न दशा में ही है। उसमें फिर खरा-खोटा करते हैं, बखेड़ा करते हैं, आपको ऐसा लगे कि अब आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है, इसलिए यह पुद्‌गल का वंश कभी समाप्त हो जाएगा तो क्या होगा? यह पुद्‌गल का वंश कभी समाप्त नहीं होता। ज्ञाता-द्रष्टा, अक्रिय ऐसा आत्मा है। उसे यत्न भी नहीं होता और प्रयत्न भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : आपको आत्मा अलग बरते, मतलब प्रत्येक प्रदेश में सब जगह जुदा बरते?

दादाश्री : हाँ, पूर्ण स्वरूप से। है ही अलग, आपको भी अलग है।

ज्ञानदशा की सहजता में तो, यदि आत्मा इसका (पुद्‌गल का) ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो ही वह सहज होता है। और उसमें छेड़खानी की, कि फिर से बिगड़ा। 'ऐसा हो तो अच्छा, ऐसा नहीं हो तो अच्छा', ऐसे दख़ल करने जाए यानी असहज हो जाए।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है कि, 'ज्ञानी को त्यागात्याग संभव नहीं है।' त्याग भी संभव नहीं है और अत्याग भी संभव नहीं है। त्याग करना भी अहंकार है और ग्रहण करना वह भी अहंकार है। सहज, सहज के लिए कोई त्याग भी नहीं है और अत्याग भी नहीं है। वह खुद उदयाधीन बरतता है। जैसे किसी गट्ठर को ले जाए न, वैसे ही। फिर गट्ठर की तरह वह मुंबई जाए और गट्ठर की तरह वापस भी आए।

'ज्ञानी' असहज नहीं है

हमें सहजता ही होती है, निरंतर सहजता ही रहती है। एक क्षणभर के लिए भी सहजता से बाहर नहीं जाते। उसमें हमारा 'अपनापा' नहीं होता, इसलिए कुदरत जैसे रखे वैसे रहते हैं। 'अपनापा' नहीं छूटता तब तक सहज कैसे हो सकते हैं? अपनापा होगा तब तक सहज कैसे हो पाएँ? अपनापा छोड़ दें तो सहज हो सकें। सहज होने पर उपयोग में रह सकें।

हमारी यह सहजता कहलाए। सहजता में किसी प्रकार का विरोध नहीं, किसी तरह की दख़ल ही नहीं। आप ऐसा कहें तो ऐसा और वैसा कहें तो वैसा। अपनापा ही नहीं न? और आप, अपनापा थोड़े ही छोड़नेवाले हैं? हमसे कोई कहे कि, 'गाड़ी में जाना है', तो वैसा। फिर कल कहे कि 'नहीं ऐसे जाना है', तो ऐसा। हमारी 'ना' नहीं होती। हमें कोई हर्ज ही नहीं है। हमारा अपना मत नहीं होता। यह

सहजता कहलाए। परायों के मतानुसार चलना वही सहजता है।

प्रश्नकर्ता : सहज स्थिति के समय निज उपयोग कैसा होता है?

दादाश्री : बिलकुल कंप्लीट! देह सहज तो आत्मा बिलकुल कंप्लीट!

प्रश्नकर्ता : तो क्या उसकी बाहर की ओर दृष्टि ही नहीं होती?

दादाश्री : वह सब कंप्लीट होता है, बाहर का सब दिखाई दे। दृष्टि में आ जाए सब, और वही सहज आत्मस्वरूप, वही परमगुरु। जिसका आत्मा ऐसा सहज रहता हो, वही परम गुरु!

प्राज्ञ सहज : अज्ञ सहज

प्रश्नकर्ता : सहजात्म स्वरूप मतलब क्या?

दादाश्री : यह देह सहज हो जाए तब आत्मा तो सहज ही है। यह सारा जो रिलेटिव हिस्सा है, वह सहज हो जाए तो आत्मा तो सहज ही है। खुद को तो कोई झँझट ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपके पास आकर मात्र सहज ही हो जाना है न?

दादाश्री : सहज ही! हमारा जो सहज स्वभाव है, उसे देखकर ही मनुष्य सहज हो जाए। उसे देखकर ऐसा तय करे तो वह सहज हो जाए।

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा कहते हैं कि जब तक बुद्धि है तब तक वह हमें सहज नहीं होने देगी।

दादाश्री : बुद्धि ही संसार में भटकाती है और बुद्धि को लेकर ही संसार खड़ा रहा है। जब तक बुद्धि रहेगी तब तक सहज नहीं हो सकते। जितनी बुद्धि कम हुई मनुष्य उतना ज्यादा सहज होता है।

ज्ञानी के पास ज्ञानवाद, बुद्धिवाद नहीं

हम छोटे बालक जैसे होते हैं, इसलिए वह ज्ञानवाद होता है, बुद्धिवाद नहीं होता। बुद्धिवाद हमेशा इमोशनल करता है और मेरा-तेरा का भेद दिखलाता है। ज्ञानवाद भेद नहीं दिखलाता, वह इमोशनल नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : प्राणिओं का भी सहज स्वभाव होता है और ज्ञानिओं का भी सहज स्वभाव होता है, तो उन दोनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : प्राणी, बालक और ज्ञानी, इन तीनों का सहज स्वभाव होता है। जहाँ बुद्धि ज़ोरदार होती है वहाँ स्वभाव सहज नहीं होता। जहाँ बुद्धि लिमिटेड (मर्यादित) वहाँ स्वभाव सहज। बालक की बुद्धि लिमिटेड, प्राणिओं की बुद्धि लिमिटेड और ज्ञानी की तो बुद्धि ही खलास हो गई होती है, इसलिए ज्ञानी तो बिलकुल ही सहज होते हैं।

ज्ञानी सदा सहज

प्रश्नकर्ता : किंतु ज्ञानी और बालक में क्या अंतर होता है?

दादाश्री : बालक अज्ञानता से सहज है और ज्ञानी सज्ञानता से सहज होते हैं। पहला अंधकार में और यह प्रकाश में। बिना प्रकाश के, मनुष्य सहज नहीं रह सकता न! इसलिए जब बुद्धि जाए उसके बाद सहज रह सके, वर्ना, इमोशनल हुए बगैर नहीं रहता। बुद्धि इमोशनल करती है।

ज्ञानीपुरुष और बालक, दोनों समान कहलाते हैं। उन दोनों में भेद क्या है? बालक उगता सूर्य है और ज्ञानी अस्त होता सूर्य है। बालक को अहंकार है मगर उसका अहंकार अभी जागृत होने का बाकी है जब कि ज्ञानी अहंकारशून्य हैं।

हम ऐसे भोले दिखाई देते हैं मगर बड़े पक्के होते हैं। बालक जैसे दिखाई दें मगर पक्के होते हैं। किसी के साथ हम ठहर नहीं जाएँगे, चलते ही

बनेंगे। हम अपना 'प्रोग्रेस' (प्रगति का पुरुषार्थ) कैसे छोड़ दें?

सहजभाव होता है वहाँ 'मैं' नहीं होता और जहाँ 'मैं' होता है वहाँ सहजता नहीं होती, दोनों एक ही जगह साथ नहीं रह सकते। हमारी यह सारी सहज क्रिया होती है, ड्रामेटिक। वह हो चूकी, फिर कुछ भी नहीं। न लेना, न देना। आज कौन-सा वार है इसकी भी हमें खबर नहीं होती। आप कहें कि सोमवार है तो हम 'हाँ' कर देंगे और आप भूल से बुधवार कहें तो हम बुधवार कहेंगे। हमारा विरोध नहीं होता, मगर सहजभाव होता है।

सहजता में पहला कौन?

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान होने के बाद प्रकृति सहज होती है या प्रकृति सहज होती जाए वैसे आत्मज्ञान प्रकट होता जाता है? ऐसा किस क्रम से होता है?

दादाश्री : हम यहाँ ज्ञान देते हैं न तब दृष्टि बदल जाती है, फिर धीरे-धीरे प्रकृति सहज होती रहती है। बाद में संपूर्ण सहज हो जाएगी। आत्मा तो सहज है ही, प्रकृति बिलकुल सहज हो गई यानी काम हो गया। अलग हो गया। प्रकृति सहज हुई यानी बाहरी हिस्सा भी भगवान हो गया। अंदर का तो है ही, अंदर का तो सभी में सहज ही है।

प्रश्नकर्ता : देह की संपूर्ण सहजता वह भगवान। आत्मा की सहजता हो वह भगवान नहीं कहलाए।

दादाश्री : आत्मा तो सहज ही है। 'देह की संपूर्ण सहजता वह भगवान' यह बराबर है, यह सही बात है। देह की संपूर्ण सहजता हो जाए वह भगवान। फिर देह यदि सहज भाव से किसी को धौल जमाती हो तब भी भगवान!

प्रश्नकर्ता : 'आत्मा सहज हो जाए तो देह अपने आप सहज हो जाए', इसका अर्थ क्या है?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा सहज हो जाए तो देह सहज हो जाए, मूल आत्मा तो सहज है। यह व्यवहार आत्मा की ही झँझट है सारी।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि सहज भाव से धौल जमाना, तो सहज भाव से कोई धौल जमा सकता है क्या?

दादाश्री : हाँ, जमा सकता है।

ज्ञानी का ऐसा सहज व्यवहार

प्रश्नकर्ता : दादाजी, सभी को प्रसाद देते हैं न, जूतों की...

दादाश्री : वह सब सहज भाव से। सहज भाव अर्थात् 'मैं मारता हूँ' यह भान नहीं होता, 'मैं मारता हूँ' यह ज्ञान नहीं होता और 'मैं मारता हूँ' यह श्रद्धा में नहीं होता, वह सहज भाव। हमारे सहज भाव से मारने के कारण किसी को दुःख नहीं होता।

हमारा सबकुछ सहज होता है। यानी सहजता पर जाना है। यह सहजता का मार्ग है। नो लॉ, (वही) लॉ, सहजता प्रति ले जाने हेतु है। लॉ (कायदा) रहा तो सहजता कैसे होगी? इस समय मैं यहाँ बैठा हूँ ऐसे बैठता नहीं कोई। कुछ उलटा-सीधा आया हो तो छूए भी नहीं, ऐसी सभी बातें साहजकिता नहीं कहलाती। साहजिक मतलब जैसे अनुकूल हो वैसे रहना। दूसरा विचार ही नहीं आता कि लोग मुझे क्या कहेंगे। ऐसा सबकुछ सहजता में नहीं होता।

सारा दिन हम सहज ही होते हैं क्योंकि क्षणभर के लिए भी हम इस देह के मालिक नहीं होते। इस वाणी के मालिक नहीं और इस मन के भी मालिक नहीं। शरीर का मालिकीपन छब्बीस साल से चला गया है और छब्बीस साल से एक सेकन्ड के लिए भी समाधि गई नहीं है। हमें धौल जमाए तो भी हमारी समाधि बनी रहे, हम धौल

जमानेवाले को आशीर्वाद दें।

शरीर स्वभाव से इफेक्टिव

शरीर अपने स्वभाव अनुसार ऊपर-नीचे हुआ करे, शरीर ऊपर-नीचे होता है वह उसकी सहजता है और आत्मा में परपरिणाम नहीं हो वह आत्मा की सहजता। सहज आत्मा अर्थात् स्व-परिणाम और शरीर ऊपर-नीचे हुआ करे, वह अपने स्वभाव में ही ऐसे उछल-कूद करता है। जलती दियासलाई को नीचे डालने पर उसका एक सिरा अपने आप ऊपर हो जाता है, वह क्या है? वह सहज परिणाम है। देह के सारे परिणाम में बदलाव आता है। किंतु अज्ञानी को बदलाव नहीं आता। अज्ञानी ऐसे स्थिर रहेगा, ज्यों का त्यों, क्योंकि उसे अहंकार है न! ज्ञानी को अहंकार नहीं है इसलिए देह के परिणाम दिखाई दें, कभी आँखें भी रोए, आदि ऐसा हो जाए।

प्रश्नकर्ता : उस समय उनकी प्रकृति रोती हो और तब वह खुद अंदर अपने स्व-स्वरूप में स्थिर होते हैं।

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति को कंट्रोल नहीं करना।

दादाश्री : प्रकृति, प्रकृति के भाव में ही होती है, उसे कंट्रोल करने की आपको ज़रूरत नहीं है। आप सहज भाव में आए तो प्रकृति सहज भाव में ही है। यदि मुझे यहाँ संगमरमर के पत्थरों पर से गुज़रना हो, बिना जूते पहने, और मैं शोर मचाऊँ कि 'अरे, पैर जल गया', तो मैं ज्ञानी हूँ। और जो ऐसा नहीं करे और अपनी जलन छुपाए, आवाज़ नहीं करे तो समझना कि वह अज्ञानी है। सहज यानी क्या? जैसा है वैसा बतला देना।

सहज को देखने से हो पाएँ सहज

एक ही वस्तु कही जाती है कि 'आत्मा तो सहज है, तू अब इस पुद्गल को सहज कर।' किंतु वह सहज कैसे हो सके? सहज को देखने से सहज हो जाता है। ज्ञानी को देखने से, उनकी सहज क्रियाओं को देखने से, सहज हो जाता है।

ज्ञानीपुरुष के पास रहने पर अपने आप सहजता उत्पन्न हो जाती है।

अनादिकाल से अपार चंचलता उत्पन्न हुई है, वह चंचलता धीरे-धीरे, मंद होते-होते, फिर सहजता उत्पन्न हो जाती है।

मुझे कोई गालियाँ देता हो उस समय मेरी सहजता देखकर आपके मन में ऐसा हो कि, 'अहो! यह कैसी ऊँची दशा है!' अतः फिर आपको भी यदि कोई गाली दे तो आपकी भी सहजता बनी रहे, वर्ना लाख अवतार में भी ऐसा नहीं सीख पाएँ। ज्ञानीपुरुष के पास रहने पर अपने आप सारे गुण प्रकट होते रहें, सहज प्रकट होते हैं।

दादाजी की अनोख़ी साहजिकता

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानीपुरुष के पास पड़े रहें' ऐसा जो कहा है मतलब पड़ा रहना और यह सब देखा करना, ऐसा ही न?

दादाश्री : हाँ, सारा दिन उनकी सहजता देखने को मिले। कैसी निर्मल सहजता! कितने निर्मल भाव! बिना अहंकार की दशा कैसी होती है, बिना बुद्धि की दशा कैसी होती है, यह सब देखने को मिलता है। ये दो दशाएँ कहीं भी देखने को नहीं मिलती। बिना अहंकार की दशा और बिना बुद्धि की दशा देखने को नहीं मिलती। बुद्धिमान देखने को मिलेंगे, जो सामान्य बात करते हों तो भी नाक यों सिकुड़ी हुई होती है। वहाँ कुछ भी सहज नहीं होता। यदि उनकी फोटो खींचे तो उस समय भी नाक सिकुड़ जाए। और फोटो खींचनेवाले यदि हमें देखें तो उनको फोटो नहीं लेनी हो तो भी उतार लें, कि यहाँ फोटो लेने जैसी है। वे सहजता खोजें।

आप हमारी फोटो लेते हों और आप कहें कि हाथ जोडिए तो हम हाथ जोडेंगे, बस। हमें और

क्या करना है? क्योंकि हमारे मन में ऐसा नहीं होता कि हमारी फोटो ली जा रही है, वर्ना विकृत हो जाएँ। हम सहजता में ही होते हैं। बाहर कहीं भी कोई फोटो खींचने आए तो वो भी समझ जाएँ कि दादाजी सहजता में ही हैं, तुरंत ही क्लिक कर दें।

जब तक हमारी सहजता बनी रहे तब तक हमें प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता। सहजता में आपको भी प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता। सहजता में फर्क पड़ा, कि प्रतिक्रमण करना पड़े। हमें आप जब भी देखेंगे तब साहजिक ही देखेंगे, हम अपने वही स्वभाव में ही दिखाई देंगे। सहजता में फर्क नहीं पड़ता।

कारण सर्वज्ञ

अबुध होने पर प्राप्ति सर्वज्ञ पद की

कॉमनसेन्स बहुत ऊँची वस्तु है। जहाँ ज़रूरत होती है वहाँ वह लागू हो जाती है। हमारे में शत-प्रतिशत कॉमनसेन्स होती है। आपमें एक प्रतिशत भी कॉमनसेन्स नहीं होती है। धागा जब उलझ जाए तब उसे तोड़े बगैर सुलझा देना वह कॉमनसेन्स है। किंतु लोग तो एक गुत्थि सुलझाने जाएँ तो पाँच और पड़ जाएँ, ऐसा है। इसलिए उनको कॉमनसेन्स के अंक कैसे दिए जाएँ? अरे! बड़े-बड़े विद्वानों में विद्वता होती है मगर कॉमनसेन्स नहीं होती। बुद्धि संपूर्ण प्रकाशमान हुई होती है किंतु वह हमारे ज्ञानप्रकाश के आगे एक कोने में बैठी रहती है। संपूर्ण ज्ञानप्रकाश के आगे बुद्धि, वह तो सूर्य के सामने दीपक समान है। हमारे पास संपूर्ण ज्ञानप्रकाश है इसलिए बुद्धि हम में नाम मात्र को नहीं है। हम अबुध हैं। एक किनारे पर अबुध पद प्रकट हुआ, कि सामनेवाले किनारे पर सर्वज्ञ पद पुष्पमाला लेकर नियमानुसार ही आकर खड़ा हो जाता है। हमें इस किनारे पर अबुध पद की प्राप्ति हुई, कि उस किनारे पर सर्वज्ञ पद आकर खड़ा हो गया। जो अबुध होता है वही सर्वज्ञ हो सकता है। हम अबुध हैं, सर्वज्ञ हैं।

सर्वज्ञ सिद्धि से करे कल्याण

आत्मा जो है वह मिक्स्चर (मिश्रण) स्वरूप में रहा है। आत्मा और अनात्मा दोनों अपने-अपने गुणधर्म के साथ रहे हैं और उनको अलग किया जा सकता है। सोने में यदि ताँबा, पित्तल, चाँदी आदि धातुओं का मिश्रण हो गया हो तो कोई वैज्ञानिक उनके गुणधर्म के आधार पर उनको अलग कर सके या नहीं? तुरंत ही कर देगा। वैसे ही, जो आत्मा, अनात्मा के गुणधर्म को पूर्ण रूप से जानते हैं और अनंत सिद्धिवाले ऐसे सर्वज्ञ ज्ञानी हैं, वो उनका पृथक्करण करके अलग कर सकते हैं। हम संसार के सब से बड़े साइंटिस्ट हैं। आत्मा और अनात्मा के प्रत्येक परमाणु का पृथक्करण करके, दोनों को अलग करके निर्मल आत्मा आपके हाथों में एक घंटे में ही थमा देते हैं।

ज्ञानीपुरुष जो सर्वज्ञ हैं वो आपके भाव मन के आगे डाट लगा देते हैं, ताकि नया मन चार्ज नहीं होता और केवल डिस्चार्ज मन ही रहता है। फिर उसके इफेक्ट को ही देखना है और जानना है।

सर्वज्ञ ने देखा कैवल्यज्ञान में

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञ जो वाणी बोलते हैं, क्या वह सब अनंत अवतार के स्मृतिज्ञान आदि में देखकर बोलते होंगे?

दादाश्री : देखकर बोलें। किंतु अनंत अवतार की स्मृति की उनको कोई ज़रूरत नहीं है। उनको तो जो प्रत्यक्ष दिखाई दे उतना ही बोलें। अन्य किसी बात की ज़रूरत नहीं है। अनंत अवतार में क्या हुआ और क्या नहीं उसकी उनको ज़रूरत नहीं है। फिर भी यदि वो उपयोग रखें तो उन्हें वह सब दिखाई दे। किंतु उनको ऐसी कोई ज़रूरत नहीं होती। कैवल्यज्ञान में सारा जगत् दिखाई देता है।

कैवल्यज्ञान में, जगत् में अन्य कुछ देखना नहीं होता है। कौन-से तत्त्व सनातन हैं, यह दिखाई

देता है और सनातन तत्त्वों की अवस्थाएँ दिखाई देती हैं, दूसरा कुछ नहीं दिखाई देता। लोग तो न जाने क्या-क्या समझ लेते हैं कि अंदर न जाने क्या दिखाई देता होगा!

सर्वज्ञ कौन कहलाए?

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञ कौन कहलाए?

दादाश्री : एक तत्त्व का ज्ञाता, ज्ञानी कहलाए। जिसने केवल आत्मा को ही जाना हो (अनुभव किया हो), वह तत्त्वज्ञानी कहलाए। और जिसने सारे तत्त्वों को जाना, अलग-अलग सारे तत्त्व क्या कर रहे हैं यह भी जाने, वह सर्वज्ञ कहलाए।

कविराज ने हमारे लिए 'सर्वज्ञ' लिखा है, किंतु वास्तव में तो वह 'कारण सर्वज्ञ' है। 'सर्वज्ञ' तो, जब ३६० डिग्री के हो तब सर्वज्ञ कहलाए। यह हमारी ३५६ डिग्री है, हम 'सर्वज्ञ' होने के कारणों का सेवन कर रहे हैं।

खुद एक समय के लिए भी परसमय में नहीं जाए, निरंतर स्वसमय में ही रहे, वह 'सर्वज्ञ' है। हम संपूर्ण अभ्यंतर निर्ग्रंथ होते हैं। हमें जिस भेस में ज्ञान हुआ हो उस भेस में फेरफार नहीं होता। कोई यह कपड़े उतार लें तो भी हमें हर्ज नहीं है और रहने दे तो भी हर्ज नहीं है। हमें लूट ले तो भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपको कितने कर्मों का अभाव होता है?

दादाश्री : हमें सारे कर्मों का अभाव होता है। केवल इस देह के पोषण हेतु जो ज़रूरी हो, उतना (ही शेष) होता है। और वह कर्म भी संवरपूर्वक की निर्जरा के साथ होता है। अन्य कोई विचार हमें होता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी आपको अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन प्रकटा होता है?

दादाश्री : सबकुछ प्रकट हुआ होता है। केवल चार डिग्री की कमी होती है। कैवल्यज्ञानी को जितना ज्ञान में दिखाई दे उतना हमारी समझ में आ गया होता है। वह कैवल्यज्ञान कहलाए, हमारा यह कैवल्यदर्शन कहलाए।

हम निर्ग्रंथ कहलाएँ। ग्रंथि यानी, बाहर गाँठ नहीं होती अंदर की गाँठ होती है, और वह गाँठ अंदर खींचे मतलब हम बातचीत करते हों उस समय आप न जाने किस विचार में खोए हों। वे गाँठें खलास नहीं होती तब तक निर्ग्रंथ नहीं हो पाते। पहले वह निर्ग्रंथ होता है। 'परम गुरु निर्ग्रंथ सर्वज्ञ देव', वे निर्ग्रंथ होते हैं। उन्हें अंदर की गाँठें नहीं होती।

(अंदर ऐसी) कितनी ही गाँठें पड़ जाने पर हास्य उड़ जाता है। ज्यों-ज्यों गाँठें टूटती जाएँ, त्यों-त्यों हास्य खुलता जाए। मुक्त हास्य चाहिए।

भूत, भविष्य को जानना मतलब वर्तमान ही

प्रश्नकर्ता : क्या सर्वज्ञ भगवान भूतकाल और भविष्यकाल के सारे पर्यायों को जानें?

दादाश्री : वर्तमान के सारे पर्यायों को जाने। कृपालुदेव ने इसका बहुत अच्छा अर्थ किया है, एक समय पर यह पर्याय ऐसे थे यह भी जाने और यह पर्याय ऐसे होंगे ऐसा भी जानें, यह पर्याय बिलकुल ऐसे हो गए, ऐसा भी जानें। त्रिकालज्ञान केवल सर्वज्ञ को ही होता है।

यानी सर्वज्ञ वह सब एक ही काल में जानें, तो भविष्यकाल और भूतकाल रहा ही नहीं फिर, सबकुछ वर्तमानकाल ही है।

'दादा' है वर्ल्ड की ऑब्ज़र्वेटरि

आत्मा जानने का फल मोक्ष है, अनंत पीड़ा में भी मोक्ष है। जिसने आत्मा जाना वह सर्व तत्त्वों का ज्ञाता-द्रष्टा हुआ।

आपको यह सारी बातें रुचती हैं? यह तो साइंस है। सारे वर्ल्ड में किसी जगह यह साइंस

प्रकट नहीं हुआ है। लोगों में पहलीबार ही यह प्रकाशित हो रहा है।

हमारे पास सारा का सारा विज्ञान है। इसलिए कहते हैं कि, 'हम सर्वज्ञ हैं।' जिनके पास यह विज्ञान नहीं था वे 'तू ही, तू ही' बोलते थे और जिसके पास यह विज्ञान है वे 'मैं ही, मैं ही' बोलते हैं। हमारे पास जो विज्ञान है वह हम फ्री ऑफ कोस्ट देते हैं। धिस इज़ द केश बैंक ऑफ डिवाइन सोल्युशन इन द वर्ल्ड।

धिस इज़ द वर्ल्डस् ऑब्ज़वेटरि (जगत् की वेधशाला है)। 'दादा' चार वेद के ऊपरी हैं, इसलिए आपके मन में सारे खुलासे हो जाने चाहिए, तभी आप समझ पाएँगे और तभी निबेड़ा आएगा।

'दादा' का चारित्र

प्रश्नकर्ता : दादा के चारित्र के ज्यों ज्यों दर्शन होते हैं, ज्यों ज्यों करीब से देखने में आता है, तब ऐसा ही होता है कि हमारे में भी ऐसा चारित्र प्रकट होना चाहिए।

दादाश्री : वह तो हो जाए, आपको चिंता भी नहीं करनी पड़े। देखने में आना चाहिए, बस। इसमें प्रयत्न करनेवाला रहा ही कहाँ फिर? प्रयत्न करनेवाला खुद तो अकर्त्ता हुआ है। और अकर्त्ता प्रयत्न कैसे कर सके?

प्रश्नकर्ता : जब प्रयत्न नहीं रहता तब सहज प्राप्त होता है।

दादाश्री : और जो प्रयत्न होता है वह भी सहज कहलाए। क्योंकि वह भोक्तापद का अहंकार है, कर्त्तापद का अहंकार नहीं है। भोक्तापद का अहंकार प्रयत्न करे वह भी सहज ही है। वह प्रयत्न नहीं कहलाए, किंतु (समझने हेतु) हमें ऐसा ही बोलना पड़े, वर्ना तो, उसके लिए कोई शब्द ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी का चारित्र देखना आए और प्रकट हो जाए, इसका क्या मतलब है? दादाजी में संपूर्ण चारित्र प्रकट हो गया है, मगर हमारी ऐसी कौन-सी भूल है कि जिससे हम देख नहीं पाते?

दादाश्री : चारित्र समझा ही नहीं है वहाँ पर। चारित्र का बाह्य लक्षण क्या है? तब कहे, वीतरागता, राग-द्वेष नहीं होते। आंतरिक चारित्र है या नहीं यदि यह खोजना चाहें तो बाह्य लक्षण देखना पड़ता है। गाली देनेवाले के प्रति द्वेष नहीं और फूलमाला पहनानेवाले के प्रति राग नहीं, ऐसी स्थिति हो तो अंदर चारित्र बरतता है, यह निश्चित हो गया।

यदि आत्मज्ञानी पुरुष का चारित्र देखेंगे तो भी बहुत हो गया समझिए। यह तो नये ही प्रकार का चारित्र है। उस चारित्र को ही देखते रहना है। उसे सीखने के लिए करना कुछ नहीं है, सिर्फ देखते रहिए। देखिए और जानिए, देखिए और जानिए।

इस सम्यक् चारित्र के बाद कैवल्य चारित्र उत्पन्न होगा। कैवल्य चारित्र में ऐसा-वैसा कुछ करने को नहीं होता है। 'स्व' और 'पर' दोनों एक नहीं हो जाए इसलिए उन्हें थाम के रखना पड़े, ऐसा कैवल्य चारित्र में नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : अपने आप सहज होता है।

दादाश्री : सहज रहनेवाला वह चारित्र अलग ही होता है। जब तक 'पर' में जाने से रोकना पड़ता है तब तक सम्यक् चारित्र कहलाता है, 'स्व' और 'पर' दोनों को एक नहीं होने देना वह सम्यक् चारित्र है। और वह कैवल्यज्ञानमयी चारित्र तो बहुत ही ऊँची वस्तु होती है।

'स्व' और 'पर' दोनों को एक होने देना वह मिथ्या चारित्र कहलाए। एक होने नहीं देना वह सम्यक् चारित्र और कैवल्यज्ञानी को कैवल्य चारित्र बरतता है। उनको, ऐसा एक नहीं होने देना, ऐसी-वैसी रोकने की ज़रूरत नहीं पड़ती है।

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सांनिध्य में आगामी सत्संग कार्यक्रम

त्रिमंदिर अडालज

२५ जुलाई (शनि)-शाम ४-३० से ६-३०-**सत्संग** तथा **२६ जुलाई** (रवि)-दोपहर ३-३० से ७-**ज्ञानविधि**

५ अगस्त (बुध) - **रक्षाबंधन** - भक्ति-दर्शन - सुबह ९ से ११

१४ अगस्त (शुक्र) - **जन्माष्टमी** - विशेष भक्ति कार्यक्रम - रात १० से १२

१५ अगस्त (शनि)-**श्री सीमंधर स्वामी भगवान की छोटी प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा**-शाम ४-३० से ७

१६ अगस्त से २३ अगस्त - पर्युषण पर्व

पर्युषण पर्व के दौरान 'प्रतिक्रमण' ग्रंथ पर सत्संग-पारायण होगा।

२९ अगस्त (शनि)-शाम ४-३० से ६-३०-**सत्संग** तथा **३० अगस्त** (रवि)-दोपहर ३-३० से ७-**ज्ञानविधि**

सूचना : बाहरगाँव से आनेवाले महात्मा-मुमुक्षुओं से निवेदन है कि रहने-खाने की व्यवस्था के लिए सुगमता हेतुसर अपने नज़दीकी सत्संग सेन्टर में और अगर नज़दीक में सत्संग सेन्टर न हो तो त्रिमंदिर अडालज (079-39830400) पर फोन द्वारा कार्यक्रम के कम से कम १५ दिन पहले अपना रजिस्ट्रेशन अवश्य करवा लें।

बेंगलूर

७-८ अगस्त (शुक्र-शनि)-शाम ६ से ८-३०-**सत्संग** तथा **९ अगस्त** (रवि), शाम ५ से ८-३० - **ज्ञानविधि**

स्थल : शिक्षक सदन ओडिटोरियम होल, कावेरी भवन के सामने, के.जी.रोड, बेंगलूर. **फोन:** 9341948509

भूज

४-५ सितम्बर (शुक्र-शनि)-शाम ६-३० से ९-**सत्संग** तथा **६ सितम्बर** (रवि), शाम ४-३० से ८- **ज्ञानविधि**

स्थल : टाउन होल, कलेक्टर कचेरी के सामने, भूज. **फोन:** 9924343764

पूज्य नीरूमाँ को देखिए टी.वी. चैनल्स पर

भारत ✦ **संस्कार**' पर हर रोज़ रात ८-३० से ९ (हिन्दी में)

✦ '**आस्था**' पर हर रोज़ शाम ६-३० से ७ (हिन्दी में)

✦ '**दूरदर्शन**' (नेशनल) पर सुबह ७-३० से ८ (गुरु-शुक्र) 'नई दृष्टि, नई राह' (हिन्दी में)

✦ '**सह्याद्रि' दूरदर्शन मराठी** पर सुबह ७-३० से ८ (सोम, मंगल, गुरु, शनि) तथा
सुबह ७-१५ से ७-३० (बुध, शुक्र) - (मराठी में)

✦ गुजरात में '**दूरदर्शन**' पर हर रोज़ दोपहर ३-३० से ४ (अन्य राज्यों में डीडी-गुजराती पर उसी समय)

USA ✦ 'TV Asia' पर हर रोज़ सुबह ७ से ७-३० (गुजराती में)

USA-UK ✦ **'Aastha International'** पर हर रोज़ सुबह ८ से ८-३० (गुजराती में)

Africa ✦ **'Aastha International'** पर हर रोज़ सुबह १०-३० से ११ (गुजराती में)

✦ **समग्र विश्व में** (भारत के अलावा) **सोनी टीवी** पर (सोम से शुक्र) सुबह ७ से ७-३० (हिन्दी में)

पूज्य दीपकभाई को देखिए टी.वी. चैनल्स पर

भारत ✦ '**झी जागरण**' पर हर रोज़ रात ९-३० से १० (हिन्दी में)

✦ '**दूरदर्शन**' डीडी-गुजराती पर हर रोज़ रात ९ से ९-३० - 'ज्ञानप्रकाश' (गुजराती में)

U.S.A. ✦ **'SAHARA ONE'** पर सोम से शुक्र सुबह ९ से ९-३० (गुजराती में)

USA-UK ✦ **'Aastha International'** पर हर रोज़ रात ९-३० से १० (गुजराती में)

Africa ✦ **'Aastha International'** पर हर रोज़ रात १२ से १२-३० (गुजराती में)